मानव धर्म

लेखक—

ब्र० शीतलप्रसाद्

‘ सनातन-जैन ’ का तीसरे वर्षका उपहार ।

मानव-धर्म

लेखक

जैनधर्मभूषण ब्र० शीतलप्रसादजी,

‘ जैनमित्र, ’ ‘ सनातन जैन ’ के सम्पादक और
गृहस्थधर्म आदि अनेक
ग्रन्थोंके रचयिता ।

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बंबई ।

प्रथमावृत्ति } पौष, वीर निर्वाण संवत् २४५६ जनवरी, १९३० { मूल्य एक रुपया

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी, मालिक
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई।

मुद्रक—
मंगेश नारायण कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
३१८ ए, ठाकुरद्वार, बम्बई २।

विषय-सूची

पृष्ठाङ्क

मानव-धर्म ।

१—मानव क्या है ?

हमको उचित है कि हम इस बातपर विचार करें कि मानव क्या वस्तु है । आदमीकी शक्ल रखनेवालेको दुनियाके लोग मानव, या मनुष्य कहते हैं । स्त्री और पुरुष ऐसे दो मनुष्योंके भेद हैं । दोनोंको ही सामान्यसे मनुष्य कहते हैं । दोनोंके शरीरकी उत्पत्ति मातासे होती है । यद्यपि सन्तानोंको जन्म देनेमें माता-पिता दोनोंका हाथ है, तथापि पिता तो गर्भाधान करके ही छुट्टी पा लेता है, गर्भ धारणा और सन्तानको नौ महीने तक बनाना माताका काम है । माता यदि ज़मीन है, तो पिता बीज बोनेवाला है । जगतमें अच्छी सन्तान होनेके लिये स्त्री और पुरुष दोनोंको बलवान्, ज्ञानवान्, विवेकी, सदाचारी और कर्तव्य-परायण होना ज़रूरी है । स्त्री और पुरुष योग्य कैसे बनें, इस बातपर विचार करनेके पहले हमको यह जान लेना ज़रूरी है कि आखिर मनुष्य क्या है ?

हरएक मानवमें चार बड़ी शक्तियाँ पाई जाती हैं—(१) शारीरिक शक्ति Physical power (२) वाचिक शक्ति (Speech power) (३) मानसिक शक्ति (Mental power) और (४) आत्मिक शक्ति (Soul power)। शक्ति किसी वस्तुमें होती है, इस लिये इन चारों प्रकारकी शक्तियोंको रखनेवाले चार पदार्थ क्रमसे हैं जिनको शरीर, वचन, मन और आत्मा कहते हैं। इन चारोंके समुदायका नाम एक मानव या मनुष्य है। इनमेंसे पहले तीन पुद्गल या जड़ पदार्थसे बनते हैं और आत्माके रहते हुए काम दे सकते हैं। मुख्य काम करनेवाला आत्मा है, जो अपनी शक्तिसे काम करता है और अपने काममें शरीर, वचन, और मनकी सहायता लेता है। मानो इस संसारके युद्धमें सिपाही तो आत्मा है और उसके शस्त्र शरीर, वचन और मन हैं। शरीरके आसरे पाँच इन्द्रियाँ होती हैं—

(१) **स्पर्शन इंद्रिय,** जो शरीर भरमें होती है, जिसके द्वारा आत्मा किसी वस्तुको छूकर ठंडा, गर्म, नर्म, कठोर, सूखा, चिकना, हलका, भारी जान सकता है।

(२) **रसना इन्द्रिय,** जो मुखके भीतर जिह्वा या ज़बान है। इससे किसी वस्तुका स्वाद जाना जाता है कि इसका स्वाद फीका है, चर्परा है, कषायला है, खट्टा है, मीठा है, या कडुवा है।

(३) **घ्राण इन्द्रिय,** नाकको कहते हैं, जिससे आत्मा सुगंध या दुर्गंधको पहचानता है।

(४) **चक्षु इन्द्रिय,** आँखोंको कहते हैं, जिससे आत्मा किसी वस्तुका रंग-रूप जानता है कि यह सफ़ेद है, लाल है, पीला है, हरा है, काला है, लम्बा चौड़ा, छोटा या बड़ा है।

(४) **कर्ण इंद्रिय**, कानोंको कहते हैं, जिनसे आत्मा शब्दोंको सुनकर उनके द्वारा किसी मतलबको समझता है। गाना सुनकर खुश होता है या गाली सुनकर अप्रसन्न होता है।

शरीरके आश्रित आठ अंग और अंगोंके आश्रय उपांग होते हैं। १ मस्तक, २ पेट, ३ पीठ, ४ दाहनी भुजा, ५ बाईं भुजा, ६ कमरके नीचे मध्यका अंग, ७ दाहना पैर और ८ बायाँ पैर, ये आठ अंग हैं। इनका जोड़ एक शरीर होता है। मस्तकके आश्रित आँख, नाक, कान, मुँह, आदि उपांग है। भुजाओंमें हथेलियाँ और उंगलियाँ उपांग हैं। जिसके द्वारा पाँचों इन्द्रियाँ, सब अंग और उपांग अपना अपना काम कर सकें, उसे शारीरिक शक्ति कहते हैं। वचन जिह्वा, होठ, तालु, दांत आदिसे प्रकट होतें हैं। वचनोंके द्वारा आत्मा अपने भीतरका भाव प्रकाश करता है। उन वचनोंको सुनकर कोई भी समझदार वचनोंके कहनेवालेके भीतरका भाव समझ लेता है। जिस शक्तिसे वचन अपना काम करते हैं, उसे वाचिक शक्ति कहते हैं। मनके द्वारा आत्मा तर्क करता है, कारण और कार्यका विचार करता है, शिक्षा लेता है, संकेत समझता है और हानि लाभका पता लगाता है। जिस शक्तिसे मन अपने कामको करता है, उसे मानसिक शक्ति कहते हैं।

आत्मा उसे कहते हैं, जो जाननेवाला है और शरीरके साथ रहकर अपने भावोंके अनुसार मन, वचन, और शरीरसे तरह तरहके काम लिया करता है। जिस शक्तिसे आत्मा अपना काम करता है, उसको आत्मिक शक्ति कहते हैं। असलमें देखा जावे, तो एक मनुष्य चेतन और जड़ दोनोंका सम्बन्धरूप जुड़ा हुआ पदार्थ है। शरीरमें रहकर काम करनेवाला आत्मा पूर्ण शुद्ध नहीं है, अशुद्ध है। अशुद्ध आत्मा ही राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न करता है, दु:खोंसे डरता है और साता चाहता है। संसारमें मानवोंकी

आत्माएँ अशुद्ध हो रहीं हैं। यह अशुद्धता कर्मोंके बंधके कारणसे है। जैन शास्त्रोंमें भले प्रकार बताया गया है कि कर्म भी जड़ पदार्थ है, बहुत सूक्ष्म है। इनका बन्ध आत्माके अशुद्ध भावोंके निमित्तसे होता है, उससे कार्माण शरीर नामका सूक्ष्म देह बनता है। यहाँपर इतना ही समझना ज़रूरी है कि एक मानव स्त्री हो या पुरुष, शरीर, वचन, मन और अशुद्ध आत्मा इन चारका जोड़ रूप है। इन चारोंसे जो काम करता है, वह मनुष्य है। इन चारोंकी शक्तियाँ जितनी बलवती होंगी, उतना ही अधिक काम किया जा सकेगा। इन चारों शक्तियोंको बलवान् बनाना मानवका कर्तव्य है।

२–शिक्षा।

हम कह चुके हैं कि एक मनुष्य चाहे स्त्री हो या पुरुष, शारीरिक, वाचिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंका समूह है। इन चारों शक्तियोंको जिस उपायसे संस्कारित, साफ़, दुरुस्त या उन्नतरूप किया जावे, उस उपाय या रास्तेको शिक्षा कहते हैं। जैसे पत्थरकी खानसे निकला हुआ माणिक या पन्नेका पत्थर (rough jewel) उस समय-तक रत्न नहीं बन सकता, जिस समय तक उस पत्थरको शानपर घिस करके या उसे साफ़ करके रत्न न बनाया जाय। रत्न बननेकी शक्ति तो उस पत्थरमें रहती है; परन्तु विना संस्कार या सफ़ाईके वह शक्ति प्रकट नहीं होती है। यदि उस पत्थरको विना संस्कारके वैसा ही डाल रक्खें, तो उसमें कभी रत्नपना नहीं चमकेगा और न वह रत्नके समान प्रतिष्ठा पायगा। वह कभी किसी राजा महाराजा या रानी सेठानीके आ-

भूषणोंमें नहीं जड़ा जायगा। वह शक्ति रखनेपर भी उन्हीं पत्थरोंके समान माना जायगा, जिन मामूली पाषाणोंमें रत्न बननेकी बिलकुल शक्ति नहीं है। इसी तरह जो बालक या बालिका माताके उदररूपी खानसे जन्मते हैं, उनमें ऊपर लिखी हुई चारों शक्तियाँ होती हैं; परन्तु उक्त शक्तियोंको शिक्षाके द्वारा जब तक साफ़ या उन्नत न किया जावे, तब तक ये शक्तियाँ न तो चमकती हैं और न अपना ठीक ठीक काम बजाती हैं। शिक्षाके द्वारा वे चमक उठती हैं और इस संसारमें आश्चर्यकारक काम करती हैं। वास्तवमें यह बात बिलकुल सच है कि शिक्षाके बिना मानव नहीं बन सकता है। यह शिक्षा ही है जो मनुष्यको वास्तविक मनुष्य बनाती है, उसकी भीतरकी शक्तियोंको चमकाती है और मानवको अपना सुधार करने तथा अपनी उन्नति करनेका मार्ग बताती है। शिक्षाके बिना शक्तियाँ यों ही व्यर्थ पड़ी रहती हैं। शिक्षाके बिना मनुष्य और पशुमें कोई अन्तर नहीं है। शिक्षाके विना जगतके मानव पशुके समान जीवन बिताकर मर जाते हैं। वे मानव-धर्म बिलकुल नहीं पाल सकते। It is an education which exposes the inner faculties of a man and makes him fit for successful struggle in his life. शिक्षाके बिना जब कोई बालक या बालिका मनुष्य नहीं बन सकता है, तब हरएक बालक या बालिकाका शिक्षा लेना कर्तव्य है, धर्म है और हरएक संरक्षकका उन्हें शिक्षा देना और उनके लिये शिक्षाका प्रबन्ध कर देना पवित्र और अत्यन्त आवश्यक फ़र्ज है। Every guardian of a child is in duty bound to educate the child whether male or female. नीतिकारोंने सच कहा है—" **विद्याविहीनः पशुः** " " **विद्याविहीनाः पशुभिः समानाः** " " **साक्षात्पशुः पुच्छविषा-**

णहीनः" या **"माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः"** अर्थात् विद्याके बिना मनुष्य पशु है। वे माता पिता बालकोंके शत्रु हैं, जो उन्हें पढ़ाते नहीं हैं। खेद है कि माता पिता बालक-बालिकाओंको मनोहर कपड़ों और गहनोंसे तो सजाते हैं, पर उनको शिक्षा देकर ज्ञानरूपी रत्नसे नहीं चमकाते हैं। असलमें वे सच्चे मा-बाप नहीं हैं, वे तो बालकके जीवनको नष्ट करनेवाले बड़े भारी बैरी हैं।

बालक और बालिकाओंके रक्षक तीन होते हैं—१ उनके पैदा करनेवाले माता-पिता, २ वह समाज जिसके साथ माता-पिताका विशेष सम्बन्ध है, ३ और भूमिपालक, राजा या शासक, जो जमीनका कर प्रजाकी रक्षा या शिक्षाके लिये वसूल करते हैं। इन तीनोंको मिलकर शिक्षाका पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिये। जिस देशमें एक भी बालक या बालिका अशिक्षित न मिले, वही देश मानवोंका देश है और उस देशके ऊपर कहे गए तीनों संरक्षक अपना यथार्थ कर्तव्य पाल रहे हैं, ऐसा कहा जायगा। जब शिक्षाका अधिकारी हर-एक स्त्री या पुरुष है, तब कितने ही मानवोंको जंगली मानकर और कितने ही मानवोंको अस्पृश्य-नीच मानकर शिक्षा नहीं देना घोर अन्याय तथा पाप है। जब शिक्षाके बिना मनुष्य बन ही नहीं सकता है, तब शिक्षा देना सबसे अधिक आवश्यक कर्म है। जो संरक्षक इस कर्मको नहीं पालते हैं, वे वास्तवमें दंडनीय हैं और समाज तथा देशके घोर द्रोही हैं। संरक्षकोंको अपना जीवन सादा बनाकर, अनावश्यक कार्योंसे धन बचाकर, प्रचुर धन और शक्ति एक शिक्षाके ही प्रचारमें लगा देनी चाहिये। ज्ञान-दानके समान कोई दान नहीं है।

जैन शास्त्रोंमें चार दान बताए हैं—आहारदान, औषधिदान, अभयदान और ज्ञानदान। इनमें सबसे अधिक उपयोगी ज्ञानदान है।

इसका कारण यह है कि आहार देनेसे तो केवल उस समयकी ही भूख मिटती है। औषधिदान इससे बड़ा है, क्योंकि इससे वह रोग जो पीड़ित कर रहा था बहुत कालके लिये या हमेशाके लिये चला जाता है। अभयदान इस दानसे भी बड़ा है, क्योंकि प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करनेसे वे जीवन भर जीवित रहकर काम कर सकते हैं। ज्ञान-दान इन सबसे बढ़कर है, क्योंकि ज्ञानसे एक मानव अपने वर्त्तमान जीवनको भी उत्तम बनाता है तथा भविष्यमें होनेवाले जीवनको भी उत्तम बनाता है। इस लिये परमोपकारी ज्ञानदानके समान कोई दान नहीं है। श्रीअमितगति आचार्य सुभाषित-रत्न-संदोहमें कहते हैं—

कर्मारण्यं दहति शिखिनवन्मातृवत्पाति दुःखा-
त्सम्यङ्नीतिं वदति गुरुवत्स्वामिवद्यद्बिभर्ति।
तत्त्वातत्त्वप्रकटनपटुस्पष्टमाप्नोति पूतं
तत्संज्ञानं विगलितमलं ज्ञानदानेन मर्त्यः॥

भावार्थ—ज्ञान-दान अग्निके समान कर्मोंके बनको जला देता है, माताके समान दुःखोंसे बचाता है, गुरुके समान भली नीतिको बताता है, स्वामीके समान पालन करता है, और इसके द्वारा मनुष्य दोषरहित, पवित्र, सुतत्त्व और कुतत्त्वको प्रकाशनेमें समर्थ ऐसे निर्मल सम्यग्ज्ञानको प्राप्त कर लेता है। इस लिये ज्ञान-दान या शिक्षा-दानके समान जगतमें कोई दान नहीं है। जो जगतका उपकार करना चाहते हैं, उनका यह पवित्र धर्म है कि जगतमें शिक्षाका प्रचार कर दें, जगतका कोई मानव, स्त्री हो या पुरुष, शिक्षा विना मूर्ख न रहे।

३—शारीरिक शिक्षा।

यह हम बता चुके हैं कि शिक्षा वह है जिससे शरीर, वचन, मन और आत्माकी शक्तियोंको कामके लायक बनाया जावे। इनमें सबसे पहली शक्ति शारीरिक है। शरीरके आधार ही वचन, मन और आत्मा रह सकते हैं। शरीर एक मकान है। जब यह रहने योग्य, तन्दुरुस्त, रोगरहित और सबल होगा, तभी अन्य शक्तियाँ कुछ काम कर सकेंगी। **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं**की उक्ति बतलाती है कि धर्म कर्म सबका साधन शरीरके ऊपर निर्भर है। रोगी तथा निर्बल आदमी न आजीविकाके लिये उद्यम कर सकता है, न संतानोंकी उत्पत्ति कर सकता है और न धर्मकी क्रियाओंको पाल सकता है। इसलिये शरीरको सदा ही बलवान् और निरोगी बनाए रखनेकी ज़रूरत है। जगतमें स्त्री माताका काम करती है, और पुरुष पिताका काम करता है। माता संतानका शरीर बनाती है, पिता वीर्य प्रदान करता है। माता-पिता दोनोंका शरीर सबल और निरोगी होगा, तभी वीर्यवान् संतान पैदा होगी। शारीरिक शक्तिको एक बड़ी भारी वस्तु माना गया है। यदि शरीर निरोग न हो, तो करोड़ोंका धन और विपुल भोगोंके साधन कुछ भी सुख नहीं दे सकते हैं। एक उर्दू कविने कहा है—"एक तन्दुरुस्ती हज़ार न्यामत।" इस शारीरिक शक्तिको शिक्षित या योग्य बनानेके लिये तीन बातोंकी शिक्षा बालक-बालिकाओंको देनी चाहिये। यह शिक्षा सिर्फ़ ज़बानी ही नहीं; किन्तु आचरण कराते हुए दी जानी चाहिये—(१) हवा पानी तथा भोजनकी शिक्षा, (२) व्यायामकी शिक्षा, (३) ब्रह्मचर्य या वीर्यरक्षाकी शिक्षा।

बालक—बालिकाओंकी मूल शिक्षिकाएँ माताएँ होती हैं। यदि माता इन तीनोंकी शिक्षासे शिक्षित होगी और वैसा आचरण करती होगी, तो उसके गर्भमें बालकोंका शरीर योग्य बनेगा और जब वे बालक उसके गोदमें पलते हुए दूध पीएँगे और उसके संकेतसे चलना-बैठना, खाना-पीना, पहरना-ओढ़ना आदि सब क्रियाएँ सीखेंगे, तब भी माताएँ ही योग्य शिक्षा देती रहेंगी। वे बालकोंको नित्य नियत समयपर दूध पिलाएँगी, सुलाएँगीं, साफ हवामें रक्खेंगी, अपना दूध गन्दा न हो, इसलिये स्वयं रोगकारक भोजन-पान न करेंगी, संयमसे रहेंगीं। बच्चोंको खेलनेकी आदत डलवाएँगीं। जहाँ तक वे बोलीको समझने लायक न हो जावें, वहाँ तक उनको क्रियासे ही शिक्षा दी जानी उचित है। जब वे बातोंको समझने लगें, तब उनको समझाकर भी शिक्षा देनी चाहिये।

मानवोंके पास नाक और ज़बान दो चौकीदार संरक्षक हैं। इनसे पूछकर ही हवा, पानी तथा भोजन लेना चाहिये। जहाँ कहीं जाना, बैठना, सोना, काम करना हो, वहाँकी हवा रोगकारक है या नहीं, इसकी जाँच नाकसे करानी चाहिये। यदि नाक कहे कि हवामें ' दुर्गंध ' है, तो उस हवासे इस तरह बचना चाहिये जिस तरह आगके भीतर पड़नेसे बचते हैं। हवा बहुत ज़रूरी वस्तु है। इससे श्वासोच्छ्वास प्राण काम करता है। हवाको स्वच्छ रखनेके लिये ग्राम और नगरके मुहल्लोंमें सफाई रहनी चाहिये, मल-मूत्रकी दुर्गंध नहीं फैलनी चाहिये, कूड़ा-करकट पानीसे बहुत दूर फिकवाना चाहिये। मोरियाँ और नालियाँ ऐसी न हों जिनमें पानी सड़ता हो। अपने अपने घरोंकी रोज़ सफाई करनी चाहिये। मल-मूत्रकी ज़रासी भी दुर्गंध न आनी चाहिये। मल-मूत्रका स्थान ऐसा नियत रखना चाहिये जहाँपर या तो वह सूख जावे, या बह जावे या तुर्त उठा लिया जावे। मलके लिये ग्रामके बाहर बिना बोए हुए खेतोंमें

जाना और उसे मिट्टीसे ढँक देना बहुत लाभप्रद है। हवा जितनी स्वच्छ होगी वह उतनी ही शरीरको लाभदायक होगी। घरके चारों तरफ यदि वृक्षावली या बगीचा हो, तो हवा बहुत साफ रह सकती है। पास पास तंग मकानोंमें रहनेकी अपेक्षा दूर दूर फैले हुए और वृक्षोंसे शोभित मकानोंमें रहना बहुत लाभप्रद है। हवा ताज़ी लेनेके लिये नदीतट, मैदान, पर्वत, बगीचों या अलंकृत मार्गोंमें टहलना बहुत उपयोगी है। स्त्री और पुरुष दोनोंको यह आवश्यक है। जिन जातियोंमें और जिन देशोंमें स्त्रियोंको परदेमें रखनेका रिवाज है, उन जातियोंकी और उन देशोंकी स्त्रियोंको स्वच्छ वायु नहीं मिलती है। वे तंग घरोंके भीतर बन्द रहती हैं। यदि बाहर कहीं जाती भी हैं, तो परदा मुँहपर पड़ा रहता है। उनको स्वच्छ हवा मिलनेका बहुत बड़ा घाटा सहना पड़ता है। प्रकृतिमें हवाके लिये कुछ दाम नहीं देने पड़ते हैं। सबको हक है कि वे अपनी बुद्धिसे स्वच्छ हवाको तलाश कर लेवें और गंदी हवाको न लेवें। स्त्रियोंके इस हक़को छीन लेना उनके साथ घोर अन्याय करना है। उनका मुख कोई न देख लेवे, इस भावसे ही परदा चल पड़ा है। जिनको परदेमें रक्खा जाता है, उनके मुखको देखनेकी विशेष इच्छा लोगोंमें पैदा हो जाती है; परन्तु जो स्त्रियाँ प्रकृतिके नियमके अनुसार मुँहको खोले हुए ही रहती हैं उनकी तरफ दर्शकोंकी मामूली दृष्टि ही पड़ती है। स्त्रियोंको ज्ञानद्वारा दृढ़ मनवाली बना देना उचित है, जिससे वे स्वयं शीलधर्म और वीर्य-रक्षाके माहात्म्यको समझ सकें। उनको परदेके भीतर बन्द रखनेकी ज़रूरत नहीं है। यह परदा स्त्रियोंको स्वच्छ हवाके लेनेमें बहुत बाधक है। परदेमें रहनेवाली स्त्रियाँ उन स्त्रियोंसे निर्बल मिलेंगीं, जो परदेमें नहीं रहती हुई स्वच्छ हवामें चरतीं हैं। हवा बल देनेमें प्रधान कारण है। बालक और बालिका-

ओंके दिलोंमें ऐसा असर डाल देना चाहिये जिससे वे समझ सकें कि स्वच्छ हवा यदि न ली जायगी तो अनेक रोग पैदा होंगे।

पानीके उपयोगमें सावधानी। पानी पीनेके लिये हमें नाक और ज़बान दोनोंसे पूछना चाहिये। पहले नाकसे पूछा जावे। यदि नाक कहे कि पानी दुर्गंधमय है, तो उसे कभी न पीना चाहिये। यदि नाक दुर्गंध न जानकर न रोके, तो फिर जबानपर लगाकर देखो कि पानी मीठा है या नहीं। यदि मीठा हो तो वह पानी पीनेके लायक है। पानी वही पीना चाहिये जो प्रकृतिमें स्वयं बहता हुआ मिलता है। नदियोंका, झरनोंका, झीलोंका, सरोवरोंका, कुँओंका कुदरती पानी पीना उचित है। बनावटी पानी हानिकारक है, जैसे बर्फका पानी। स्वभावसे बहते हुए पानीको अच्छी तरह छानकर काममें लाना उचित है। गाढ़े उजले कपड़ेको दोहरा करके पानी छानना चाहिये। पानीमें बहुतसे कीट रहते हैं, जो आँखोंसे नहीं दिखलाई पड़ते हैं और अन्य भी हानिकारक पदार्थ रहते हैं। इस लिये पानीका छानना बहुत ज़रूरी है। छने हुए पानीको ही काममें लाना चाहिये। यह पानी ४८ मिनटके भीतर तक ही काममें आनेके लायक है। इसके बाद उसे फिर छानना चाहिये। यदि पानीका रंग या गंध इलायची, लौंग, चंदन, नमक आदि कसायले पदार्थोंका चूरा मिलाकर बदल डाला जावे, तो वह पानी ६ घंटे बिना छने काममें आ सकता है। इस पानीको प्रासुक कहते हैं। परन्तु इसे इसी म्यादके भीतर काममें ले लेना चाहिये। यदि म्यादसे अधिक रहेगा, तो फिर वह अपेय हो जायगा। पानीको छाननेके पीछे इस प्रकार गर्म कर लेनेसे कि गर्म तो हो जावे परन्तु उबाल न आवे, वह पानी १२ घंटेतक बिना छाने काममें लाया जा सकता है। यदि पानीको अच्छी तरह उबाल लिया जावे, तो वह २४ घंटे तक चल सकता है।

ऐसे प्रासुक, गर्म या उबाले हुए पानीको उसकी म्यादके भीतर काममें ले लेना चाहिये।

जिस पानीमें शंका हो कि यह गन्दा है, उस पानीको छानकर फिर उबालकर और फिर छान करके ठंडा करके पीना उचित है। इससे रोगोंकी उत्पत्ति नहीं होगी। हमें बालक बालिकाओंको ऐसा ही शुद्ध छना हुआ पानी पीनेको देना चाहिये। बहुतसे रोग पानी पीनेकी भूलसे हो जाया करते हैं। पानीकी सावधानी इस जीवनके लिये बहुत आवश्यक है। जो लोग बिना विचारे चाहे जहाँका पानी बिना छाने पी लिया करते हैं, वे बहुधा पानीके भीतर पाए जानेवाले कीटाणुओंके शिकार बनते हैं और अपनेको रोगी बना लेते हैं।

४—भोजन।

शरीरकी स्थिरताके लिये भोजन वही करना उचित है जो निरोगी तथा बलप्रद हो और जिसकी प्राप्तिमें हिंसा, जहाँ तक हो न की गई हो अथवा बहुत अल्प की गई हो। इस लोकमें जैसे हवा और पानी स्वभावसे ही मानवोंके ग्रहण करने योग्य हैं, वैसे ही स्वभावसे वृक्ष जातिसे जो धान्य, फल या मेवा पैदा होते हैं, वे मानवके खाद्य हैं। मानवोंका आहार मांस या मद्य नहीं है। भोजनके लिये भी हमें नाक और ज़बानसे पूछना चाहिये। जो पदार्थ अपनी असली दशामें नाकको सुगंधित और जबानको स्वादिष्ट लगें, वे ही ग्रहण करने योग्य हैं। कच्चा मांस और शराब दुर्गंधयुक्त होते हैं। नाक इन्हें कभी मंजूर नहीं कर सकती। जिसे नाकने कबूल नहीं किया, उसे ज़बान कभी स्वीकार

नहीं कर सकती। एक बालक जो तीन चार वर्षका है, जिसको, कभी मांस नहीं दिया गया है, उसके आगे यदि मांसकी डली और सेवका फल दोनों डाल दिये जावें, तो वह सेवको उठाकर खाने लगा जायगा—मांसको नहीं छूएगा। मानवोंके दाँत, मानवोंके पेट, बन्दर आदि उन जानवरोंसे मिलते हैं, जो शाकाहारी हैं और स्वभावसे मांसाहारी नहीं हैं। इस जगतमें जितने कामवाले पशु हैं, वे स्वभावसे ही मांस नहीं खाते हैं। जैसे बैल, घोड़ा, ऊँट आदि। मानव भी एक कामवाला प्राणी है। इसे भी मांसकी ज़रूरत नहीं है। जब शरीरको बलिष्ठ और निरोगी रखनेके लिये भोजन किया जाता है, तब हमको यह देख लेना चाहिये कि मांसमें अन्नादि पदार्थोंसे अधिक शक्ति है या कम। यदि शक्ति भी कम हो, तो फिर मांसको क्यों खाना चाहिये?

'The Toiler and His Food by Sir William Earnshaw Cooper, C. I. E.

'टाइलर एंड हिज़ फुड' नामक पुस्तकमें जिसको सर विलियम एर्नशा कूपर, सी० आई० ई० ने लिखा है भिन्न भिन्न भोजनोंका मिलान करते हुए उनके शक्ति-अंशोंका परिणाम दिया है, उसमेंसे कुछ भाग नीचे दिया जाता है—

नाम पदार्थ	प्रतिशत कितने अंश शक्ति है
१ बादाम आदिकी गिरी	९१
२ सूखे मटर चने आदि	८७
३ चावल (मांडसहित)	८७
४ गेहूँका आटा	८६
५ जौका आटा	८४
६ सूखे फल किसमिस खजूर आदि	७३

नाम पदार्थ	प्रतिशत कितने अंश शक्ति है
७ घी	८७
८ मलाई	६९
९ मांस	२८
१० मछली	१३
११ अंडे	२६

ऊपरके नंबरोंसे विदित होता है कि मांस, मछली व अंडोंमें और भोजनोंकी अपेक्षा शक्ति बहुत कम है। लंडनमें Order of Golden Age 'आर्डर आफ गोल्डन एज' नामकी संस्था है, जिसका पता है- No. 153-155 Broumpton Road, London S. W. नं० १५३-१५५ ब्रोम्प्टन रोड लंडन, साउथवेस्ट। उसने मांसाहारके विरुद्ध बहुतसा साहित्य प्रसिद्ध किया है। उसने The Testimony of Science in Favour of Natural and Human Diet 'दी टेस्टिमनी आफ साइन्स इन फेवर आफ नेचुरल ऍंड ह्युमन डाइट' नामकी बहुत उपयोगी पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें मांसाहारके विरुद्ध बहुतसे प्रमाण हैं। एक दो यहाँ दिये जाते हैं—

Dr. Josiah Oldfield, D. C. L., M. A., M. R. C. S., L. R. C. P., Senior Physician, Margaret Hospital, Bromlay डाक्टर जोशिया ओल्डफील्ड, डी० सी० एल०, एम० ए०, एम० आर० सी० एस०, एल० आर० सी० पी०. बड़े डाक्टर मारगेरेट, हास्पिटल ब्रॉमले कहते हैं—

"To-day there is the scientific fact assured that man belongs not to the flesh-eaters but to the fruit-eaters. To-day there is the chemical fact in hands of all which one can gainsay that the products of the vegetable kingdom contain all that is necessary for the

fullest sustenance of human life. Flesh is an unnatural food, and therefore tends to create functional disturbance. As it is taken in modern civilization, it is affected with such terrible diseases (readily communicable to man) as cancer, consumption, fever, intestinal worms etc. to an enormous extent. There is little need for wonder that flesh-eating is one of the most serious causes of the diseases that carry off ninety-nine out of every hundred people that are born.

भावार्थ यह है कि आज विज्ञानके द्वारा यह निर्णय हो गया है कि मनुष्य मांसाहारियोंमें नहीं है, किन्तु शाकाहारियोंमें है। आज सबके हाथोंमें यह परीक्षा की हुई बात मौजूद है जिसको कोई इनकार नहीं कर सकता है कि वनस्पति जातिमें वह सब कुछ है, जो मनुष्यके पूर्णसे पूर्ण जीवनको स्थिर रखनेके लिये आवश्यक है। मांस अप्राकृतिक भोजन है और इसीलिये शरीरमें अनेक उपद्रव पैदा करता है। आजकलकी सभ्य समाज इस मांसको लेनेसे कैन्सर, क्षय, ज्वर, पेटके कीड़े आदि भयानक रोगोंसे, जो एक मनुष्यसे दूसरेमें फैलते हैं, बहुत अधिक पीड़ित होता है। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि मांसाहार उन भयानक रोगोंके कारणोंमेंसे एक कारण है जो १०० मनुष्योंमेंसे ९९ को सताते हैं।

Prof. G. Sims Woodhead, M. D., F. R. C. P., F. R. S., Professor of Pathology, Cambridge University. प्रोफेसर जी० सिम्स उडहेड, एम० डी०, एफ० आर० सी० पी०, एफ० आर० एस०, प्रोफेसर आफ पैथेलोजी कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटीने १२ मई सन, १९०९ को एक भाषणमें कहा था—

Meat is absolutely un-necessary for perfectly healthy existence, and the best work can be done on a vegetarian diet.

भावार्थ—पूर्ण स्वास्थ्ययुक्त जीवन बितानेके लिये मांस बिल्कुल अनावश्यक है। केवल शाकाहारपर बसर करनेसे सबसे बढ़िया काम किया जा सकता है।

प्राचीन कालमें बड़े बड़े विद्वान् यूरपमें भी ऐसे हो गये हैं, जिन्होंने मांसाहार नहीं किया, जैसे यूनानके पैथोगोरस, प्लेटो, ॲरिस्टॉटिल, साक्रेटीज़, पादरी जेम्स, मैथ्यू, पीटर, मिल्टन, सर आइज़क न्यूटन, बेंजामिन फ्रेंकलिन, शेली। आधुनिक विज्ञानका धुरन्धर विद्वान् एडीसन मांस नहीं खाता है। पारसियोंके गुरु जरथोस्त मांस नहीं खाते थे।

ठंढे देशोंमें भी मांसाहार करनेकी जरूरत नहीं है, इसपर मदरासके थियासोफीके प्रसिद्ध विद्वान् सी० जिनराजदास एम० ए० ने बम्बईमें ता० २ सितम्बर १९१८ को इस भाँति कहा था—"मांस-भोजन भी स्थूल बुद्धिका काम है। वर्तमान युद्धके पहले पश्चिमीय देशोंमें मांसाहारकी विरुद्धता इतनी नहीं थी जितनी अब हो गई है। लड़ाकू कौमोंको शाकाहारी होना पड़ा है। क्योंकि शाकाहारसे स्वास्थ्य अच्छा रहता है। शाकाहारके विरुद्ध एक भी युक्ति नहीं है। पश्चिमीय देशोंमें दौड़ लगाने, बाईसिकलपर चढ़ने, कुस्ती लड़ने आदिमें शाकाहारियोंने मांसाहारियोंपर बाजी मार ली है। ठंडे देशोंमें भी मांसाहारकी जरूरत नहीं है। पश्चिमके सर्व देशोंमें हजारों शाकाहारी रहते हैं। मैं इंग्लैंडमें १२ वर्ष शाकभोजनपर रहा। मैंने अमेरिकाके शिकागो और कैनेडाके जाड़े शाकाहारपर काटे हैं तथा मांसाहारियोंकी अपेक्षा भले प्रकार जीवन बिताया है। शाकाहारके लाभ अगणित हैं।"

जहाँ मानवोंकी उत्पत्ति होगी, वहाँ हवा, पानी, भूमि, अवश्य होगी, इसलिये वनस्पति ज़रूर पैदा होगी। यदि आदतोंको प्रकृतिके अनुकूल रक्खा जावे, तो मांसकी बिलकुल ज़रूरत नहीं है।

मांसाहारके प्रचारके कारण खेतीके कामके लायक और दूध देनेवाले योग्य पशु भी कसाईखानोंमें मारे जाते हैं। किसी मानव या पशुकी जान लेना कभी मानव-धर्म नहीं हो सकता है। जब मांस शरीरको बलवान् नहीं बनाता है, उल्टा अनेक रोगोंको पैदा करता है, तब मांसके लिये, जिसमें मछली और अंडे भी शामिल हैं, जीवधारियोंको तड़पा तड़पाकर, रुला रुलाकर, मारना या मारनेका निमित्त बनना और उन बेचारोंको अपने जीवनको भोगने न देना घोर अन्याय, पाप और अमानुष कर्म है।

यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि भारतके हिन्दू कहलानेवाले भी बहुत अधिक मांस खाते हैं, जब कि हिन्दुओंके शास्त्रोंमें मांस खानेकी मनाई और अहिंसा धर्मकी प्रशंसा है। मनुस्मृतिमें लिखा है—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मासं विवर्जयेत्।—अ० ५,४८

भावार्थ—प्राणियोंकी हिंसाके विना मांस नहीं उत्पन्न हो सकता है और प्राणिवध स्वर्गका द्वार नहीं नरकका द्वार है, इसलिये मांस कभी न खावे।

अथर्व वेद (९।३६।९) में कहा है—

'मांसं तदेव नाश्नीयात्'

मांस कभी न खावे। यदि करोड़ों हिन्दू—जो मांस खाते हैं—मांस खाना छोड़ दें, तो लाखों पशु जो मांसके लिये निरर्थक प्राण गँवाते हैं,

बच जावें। मानवको दयावान् होना चाहिये। उसका कर्तव्य होना चाहिये कि निरर्थक तो वह कभी किसी प्राणीको न सतावे, न मारे। बौद्ध लोगोंमें अहिंसाका बड़ा भारी उपदेश है, तथापि आज करोड़ों बौद्ध हिंसक हो रहे हैं। वे यद्यपि स्वयं पशुओंको नहीं मारते हैं, तथापि उनके निमित्तसे अगणित जीव मारे जाते हैं। वे मांस खाते हैं, जिसके लिये बाज़ारोंमें लोग जीवधारियोंको मारकर मांस बेचते हैं। क्या मांस खानेसे वे पशुहिंसाके दोषसे बच सकते हैं? बौद्ध धर्ममें पाँच व्रत माने गये हैं, उनमें पहिला व्रत अहिंसा है। जब तक बौद्ध लोग शाकाहारी न होंगे, तब तक पशुहिंसासे नहीं बच सकते।

ईसाइयोंमें भी मांस खानेका बहुत प्रचार है। परन्तु उनकी दश आज्ञाओंमें Do not kill प्राणी वध न करो, यह पहली आज्ञा है। शाकाहार करनेकी ही आज्ञा बाइबलमें है। देखिये—

Behold, I have given you every herb bearing seed, which is upon the face of all the earth, and every tree in which is the fruit of a tree yielding seed; to you it shall be for meat (Genesis chap I. 29.)

भावार्थ—देखो जमीनपर धान्य उत्पन्न करनेवाली वनस्पतिको और फल-उत्पादक वृक्षोंको मैंने तुम्हें दिया है। यही धान्य और फल तुम्हारा भोजन होगा।

न्यू टेस्टामेंटमें सेंट ल्यूक कहते हैं—

Be ye therefore merciful, as your father also is merciful (36-6) अर्थात् क्यों कि तुम्हारा पिता ईश्वर भी दयावान् है, इस लिये तुम दयावान् हो।

यहूदी लोगोंके माने हुए ग्रंथोंमें भी मांस खाना हिंसाका कारण बताया है और ईश्वरको नापसंद है, ऐसा झलकाया है। देखिए—

“ वे मेरे चढ़ावेके लिये मांस बलिदान करते हैं और उसे भक्षण करते हैं। प्रभु उसको स्वीकार नहीं करता। अब वह उनकी बुराई स्मरण करेगा और अपराधोंका उनको दंड देगा।” (होसया ८।१३, गऊवाणी पृष्ठ ९८)

मुसलमान भाइयोंमें भी मांसका बहुत प्रचार है और वे इसे अपने धर्मकी आज्ञाके अविरुद्ध मान रहे हैं। मुहम्मद साहबका मत दया सिखाना था। वे हिंसाको बहुत बुरा समझते थे। कुरान शरीफके ८८ वें अध्यायमें है—

“ ऊँटोंका मांस ईश्वरको स्वीकृत नहीं है और न उनका खून। इस लिये तुम्हारा धर्मभाव मात्र स्वीकृत है। (गोवाणी पृ० १०१)

पारसियोंके यहाँ भी मांसका प्रचार बहुत है। उनको भी विचारना चाहिये। उनकी पुस्तक **शायस्तला** शायस्तमें लिखा है—

“ नियम यह है कि मांसद्वारा जब कि उसमेंसे दुर्गन्ध सड़ान भी न निकल रही हो, तो याचना नहीं करनी चाहिये।” (गोवाणी पृ० १०१)

इस तरह यह अच्छे प्रकार समझना चाहिये कि मानवोंके लिये मांसकी बिलकुल जरूरत नहीं है। मांसाहार चित्तको किसी कदर कठोर, निर्दय, और हिंसक बना देता है। दया और प्राणिमात्रपर प्रेमभावका उच्च आदर्श दिलसे निकल जाता है।

इसी तरह किसी भी मादक पदार्थका सेवन किसी भी मानवको न करना चाहिये। मद्य मानवके ज्ञानको उत्तेजित करके उसे प्रमादी

और विवेकशून्य बना देती है, तथा मानवके जीवनके समयको वृथा नष्ट कराती है, साथ ही उपयोगी पैसेका भी बुरा उपयोग होता है। जिनको किसी भी नशेके सेवनकी आदत पड़ जाती है उनको जिस तिस तरह धन लाकर नशेमें उड़ाना पड़ता है। शराबखोर मजदूर जो आठ आने रोज़ कमाते हैं अपने कुटुम्बके भोजन-पान और वस्त्रादिमें खरचना भूलकर रोज़ नशेमें फूँक देते हैं। सिगरेट बीड़ी पीनेवाले दो चार आने रोजकी तम्बाकू पी जाते हैं। मादक पदार्थ एक तो चेतन स्वभावको विपरीत करते हैं, दूसरे शरीरको खराब, निर्बल और रोगमय बनाते हैं, तीसरे पैसेका और चौथे समयका नाश करते हैं। इसलिये मानव-समाजके नाशक नशेको कभी भूलसे भी नहीं लेना चाहिये। क्यों कि जहाँ दो चार दफे नशैले पदार्थको लिया गया, वहाँ उसकी आदत पड़ जाती है; फिर उसका छूटना कठिन हो जाता है। हर एक मातापिताका फ़र्ज़ है कि बच्चोंको हर तरहके नशेसे बचावे। हर एक सरकार और देशके शासकका फर्ज़ है कि देशमें नशैले पदार्थोंकी उपज और बनावटको बंद करावे और नशेके लिये उनकी बिक्री रोक देवे। नशेमें चूर और मदसे भरपूर प्राणी बुद्धिरहित हो जाता है। कहा है—

मद्यं मोहयति मनो मोहितचित्तस्तु विस्मरति धर्म्मम्।
विस्मृतधर्मा जीवो हिंसामविशंकमाचरति॥

अर्थात् मादक पदार्थ मनको मोही बना देता है, मोही चित्त धर्मको भूल जाता है, धर्मको भूला हुआ जीव निडर हो हिंसा करने लग जाता है। इसलिये यही हितकर है कि कभी किसी नशेका सेवन न किया जाय। बहुधा माता रोनेसे चुप करनेके लिये बच्चोंको अफ़ीम खिला

देती है। इससे बालक सुस्त तो हो जाता है; परन्तु उसके नए, कच्चे और कोमल शरीरपर बहुत बुरा असर पड़ता है। न हमको सड़े-बुसे, गले और बासी पदार्थोंको खाना चाहिये। इनमें बहुतसे महीन न दिखनेवाले कीड़े पड़ जाते हैं और मर जाते हैं। इसीसे उनका असली स्वाद नहीं रहता है। हमेशा ताजे पदार्थोंका सेवन ही शरीरको लाभकारी होता है।

भारतवर्षकी आबोहवाके अनुसार नीचे लिखे प्रमाण समय तक पदार्थोंका सेवन करना लाभकारी है। उस समय तक उस पदार्थमें कीटाणु नहीं पैदा होते हैं, इस लिये वह बिगड़ता नहीं है, अपने असली स्वादमें रहता है।

१—कढ़ी, दाल, खिचड़ी, आदि कच्ची रसोईकी मर्यादा प्रारंभसे छः घंटा।

२—रोटी, मुलायम पूरी, तरकारीकी दिनभर—रातवासी नहीं।

३—सुहाल, लाडू, बर्फी, पेड़ा, आदि मिठाई और खस्ता कचौरी आचार तथा मुरब्बा प्रारंभसे २४ घंटे।

४—बिना पानीके घी और अन्नसे बने पदार्थ शक्कररहित या सहित तथा पिसा हुआ आटा, या चून या मसाला—प्रारंभसे सात दिन तक जाड़ेमें, पाँच दिन तक गर्मीमें और तीन दिन तक वर्षामें। (नोट—श्रावणसे कार्तिक तक वर्षा, मार्गशीर्षसे फाल्गुन तक जाड़े, चैतसे आषाढ़ तक गर्मी जाननी चाहिये।)

५ शक्करका बूरा साफ किया हुआ—प्रारंभसे १ मास जाड़ा, १५ दिन गर्मी और ७ दिन बरसात।

६ घी और तेल वहाँ तक चल सकते हैं, जहाँ तक उनका स्वाद न बिगड़े ।

७—दूधको थन धोकर दोहना चाहिये । फिर छानकर ४८ मिनटके भीतर या तो पी लेना चाहिये या समयके भीतर औटानेको रख दिया जाना चाहिये। यह औंटाया हुआ दूध प्रारंभसे २४ घंटे काममें आ सकता है। ऐसे ही दूधको जमाकर दही व मक्खन निकालना चाहिये । मक्खनको ४८ मिनटके भीतर ही आगमें तपाकर घी बना लेना चाहिये । खिचा हुआ अर्क औंटा लेनेपर प्रारंभसे ८ पहर तक चल सकता है ।

यदि इस तरह मियादके भीतर भोजन खाया जावे, तो रोगकारी कीटोंका कलेवर शरीरमें न जावे तथा रोग पैदा न हो । हमको हमेशा भूख रखकर भोजन करना चाहिए । ठूँसठूँस कर पेटको न भरना चाहिये। बहुत उत्तम हो यदि यह खयाल रक्खा जावे कि अपनी भूखके चार भाग किये जावें । दो भागोंको अन्न और फलादिसे, एक भागको जलसे भरा जावे और एक भागको खाली रक्खा जावे । मानवका उदर एक ऐसा बर्तन है जहाँ पदार्थ उदरकी अग्निसे पचते हैं । जैसे भात पकानेके लिये बटुवेमें चावल डालते, पानी डालते तथा चौथाई भाग खाली रखते हैं जिससे कि उबाल आ सके । यदि बिलकुल बटुवा भरा होगा तो उबाल आनेपर चावल बाहर गिर पड़ेंगे । इसी तरह एक भाग उदर खाली होगा, तो भोजन ठीक पचेगा । यदि खाली न होगा, तो पाखानेके द्वारा या वमनके द्वारा कच्चा भोजन निकल जावेगा ।

भोजनको दाँतोंसे खूब चबाचबाकर खाना चाहिये ताकि खूब पिस जावे और मुँहकी रालसे मिल जावे । यह राल भोजनके पचानेमें बड़ी सहायक है । यदि दाँतोंसे भले प्रकार चबाए बिना भोजन पेटमें चल

जायगा, तो वैसा ही पाखानेके मार्गसे निकल जायगा। उसमेंसे रस न निकल सकेगा। क्यों कि पेटमें कोई यंत्र भोजनको पीसनेवाला नहीं है।

एक दफा भोजन कर लेनेके पीछे दूसरी दफा भोजन तब ही करना चाहिये, जब पहला भोजन हजम हो जावे और सच्ची भूख लग जावे। भूख खूब लगनेपर ही दूसरी दफा भोजन करना चाहिये। यदि भूख न लगे तो भोजन दुबारा न करना ही सुखप्रद है। जैसे बर्तनमें एक दफा डाला हुआ अन्न जब पक जावे तब दूसरा अन्न डालना चाहिये। यदि अधपकेमें दूसरा कच्चा अन्न डाल दिया जायगा, तो कोई भी ठीक न पकेगा। इसी तरह पहले खाया हुआ भोजन जब खूब हजम हो जावे, तब ही दूसरा भोजन खाना चाहिये। वारंवार खानेकी आदतको नहीं रखना चाहिये। जो लोग विना भूख लगे खाते हैं, वे पृथ्वीके अन्नको वृथा ही नष्ट करते हैं। वह अन्न यों ही विना पचे हुए पेटसे निकल जाता है। रात्रिकी अपेक्षा दिनमें खाना बहुत लाभदायक है। सूर्यकी किरणोंके निमित्तसे भोजन पाचक हो जाता है। रात्रिको विश्रांति देनी उचित है। जो दिनमें खान पान करते हैं और रात्रिको आराम करते हैं, उनका भोजन खूब हजम होता है। सबेरे दस्त गाढ़ा आता है। गाढ़ा बँधा हुआ दस्त न होकर यदि पतला या ढीला दस्त हो, तो समझना चाहिये कि अनपचा भोजन पेटसे निकल रहा है। इस समय भारतमें महात्मा गाँधी बहुत विचारवान् व्यक्ति हैं। वे संयमके साथ रहते हैं और रात्रिको नहीं खाते हैं। वे ता० ३१ मई १९२८ के यंग इंडियामें लिखते हैं—

I pledged myself never whilst in India to take more than five articles in twenty-four hours and

never to eat after dark. I have been under these vows for now thirteen years. I am of opinion that they have added a few years to my life and saved me from illness.

भावार्थ—"मैने स्वयं यह प्रतिज्ञा ली थी कि जब मैं भारतमें रहूँगा, तब २४ घंटोंके मध्य पाँच वस्तुओंसे अधिक नहीं खाऊँगा तथा सूर्यास्तके पीछे रात्रिको कभी भोजन नहीं करूँगा। मैं तेरह वर्षोंसे इन नियमोंको पाल रहा हूँ। मेरी राय है कि इन नियमोंसे मेरा जीवन स्थिर रहा और मैं बीमारीसे बचा हूँ।"

रात्रिको भोजन करनेसे दिनकी अपेक्षा प्राणिघात भी अधिक होता है। बहुतसे कीट दिनमें विश्राम करते हैं, रात्रिको उड़ते हैं, और भूखसे पीड़ित हो भोजनमें गिर जाते हैं। मानवके शरीरके लिये गायका दूध बहुत लाभकरी है–पर वह शुद्ध मिलना चाहिये। बाजारोंमें दूध घी शुद्ध नहीं मिलते हैं। इस लिये हर एक गृहस्थको गोवंशका पालक होना चाहिये। गाय भैंसकी भले प्रकार रक्षा करे और उनके बच्चोंको न सताकर जब बच्चे चारा चरनेलायक हो जावें, तब उनका दूध लेकर उसीको पीना पिलाना और उसका घी आदि बनाना चाहिये। इस भारतमें धनी वही कहलाता था, जो गोवंशका पालक हो। दूध देने वाले और खेतीके लायक पशु जिसके घरमें न होते थे, उसको निर्धन कहते थे।

भोजनकी शुद्धता और ताजापना शरीरको अत्यन्त लाभकारी है। इस शरीरको एक यंत्र मानकर इसको उचित मसाला देना चाहिये, जिससे यह बराबर चलता रहे और कभी रोगी, आलसी, स्वच्छन्द, और अन्याय

तथा दुराचारमें प्रेरक न बने। जो शरीरको नौकरके समान रखते हैं, वे शरीरसे बहुत उपयोगी काम ले सकते हैं। वे शरीरको पुष्ट व स्वास्थ्य-युक्त रखनेके योग्य भोजन पानादि देते हैं, और उसको अपने वश रखकर अपना लौकिक पारलौकिक काम लेते हैं। उसे कभी प्रमादी बनने नहीं देते। परंतु जो शरीरके ही सेवक हो जाते हैं वे आलसी होकर धर्म कर्मका कुछ भी साधन नहीं कर सकते हैं। वे दिनरात रोगोंकी शिकायतें किया करते हैं। सदा शरीरके नखरोंमें ही मनको लगाए रखते हैं। वे परिश्रमसे घबड़ाते हैं। वे इन्द्रियोंके दास होकर इस लोक और परलोक दोनोंको भ्रष्ट करते हैं। शरीर हमारे काम करनेका यंत्र है। इसको ठीक रखनेके लिये भोजन करना है। शारीरिक शक्तिके बनानेके लिये पहली बात भोजन, पानी और हवाकी शुद्धता है। इसपर बहुत अधिक ध्यान देनेकी जरूरत है।

Modern Review for July 1928 (माडर्न रिव्यू, जुलाई सन् १९२८) के पृष्ठ ८८ में नीचे लिखे वाक्य जो Oriental Watchman और Herald of Health ओरियण्टल वाचमन और हेरल्ड ऑफ हेल्थ नामक पत्रमें प्रकट हुए हैं, बहुत उपयोगी हैं—

Man's first essential is pure air and plenty of it night and day. More time should be given to voluntary deep breathing efforts. Second in the essentials is water; pure, fresh, uncontaminated water, four to six glasses daily. Our physical bulk is seven-tenths water. The third essential is a full complement of vitamins known as A. B. C. D. and E. These substances are more important for maintain-

ing health and full vitality than the grosser food substances which compose the bulk of our diet. Vitamins are mainly found in uncooked, fresh, raw fruits, and Vegetables. Fourth—Consideration should be given to the sixteen essential mineral salts as found in wholewheat bread, fruits, nuts and vegetables. Food must be so selected as to supply the full quota of all sixteen. Absence or deficiency in any one produces impaired health.

Fifth:—Avoip taking excess of remaining food-elements such as protein, starch, sugar and fats. Excessive food intake of proteins and starches is responsible for more ill-health than an insufficient supply.

Sixth:—Health necessitates a sanitary environment to live in. Insanitary and unhygienic practices lay the foundation for disease.

Seventh:—Daily exercise of nature to bring all groups of muscles into operation. Such exercises need not be necessarily heroic, but should be done in a manner to make it interesting and not irksome. Finally we must stress the importance of positive, cheerful, hopeful and spiritual thoughts. The crowning glory of man comes from this thought-life. A lofty mentality in a well-poised body constitutes the ideal man.

भावार्थ—मानवके लिये प्रथम आवश्यक वस्तु ताजी हवा है, सो भी रातदिन अधिक परिमाणमें लेनी चाहिये। स्वतंत्रतासे दीर्घ श्वास

लेनेके अभ्यासमें बहुत समय दिया जाना चाहिये। दूसरी वस्तु पानी है। जो शुद्ध ताजा तथा बिगड़ा हुआ न हो, उसे प्रतिदिन ४ से ६ ग्लास पीना चाहिये। तीसरी आवश्यक वस्तु है विटामिन नामका पदार्थ। यह स्वास्थ्य और पूर्ण जीवन शक्तिके बनानेमें उन स्थूल पदार्थोंकी अपेक्षा बहुत जरूरी है जो हमारा अधिक खाद्य होते हैं। विटामिन ख़ासकर बिना पकाए हुए ताजे व कच्चे फलोंमें और तरकारियोंमें पाया जाता है। यहाँ कच्चेसे मतलब है जो फल पके तो हों, पर आगमें न पकाये गए हों।

चौथी जरूरी बात यह है कि उन सोलह तरहके क्षारोंपर ध्यान देना चाहिये जो रोटी, फल, बादाम और तरकारियोंमें पाए जाते हैं। भोजन ऐसा चुनकर खाना चाहिये कि १६ प्रकारके क्षार पूर्णरूपसे खानेमें आ जावें। यदि एक भी कम होगा व कम परिमाणमें होगा, तो स्वास्थ्यमें कमी रहेगी। पाँचवीं जरूरी बात यह है कि प्रोटीन, स्टार्च (कलक) शक्कर तथा चिकने पदार्थोंको भोजनमें अधिक लेना छोड़ा जावे। इनको अधिक लेनेसे स्वास्थ्य खराब हो जाता है। छठी ज़रूरी बात यह है कि तन्दुरुस्तीके लिये चारों तरफ रहनेका स्थान स्वास्थ्यरूप हो। कूड़ा करकटसे व गंदी आदतोंसे (जैसे चाहे जहाँ थूकना आदि) से बीमारी पैदा होती है। सातवीं जरूरी बात यह है कि नित्य व्यायाम करना चाहिये जिससे रग-पट्ठे खूब हिल जावें। कष्टदायी व्यायाम न हो, किन्तु मनोरंजक हो। अन्तमें हमारे भाव आस्तिकरूप, प्रसन्न, आशारूप तथा आध्यात्मिक होने चाहिये। भावोंके जीवनसे ही मानवकी उन्नति होती है। जिसका शरीर भी संगठित है और मन भी उच्च है, वही आदर्श मानव है।

हमें उचित है कि हम अपने बालक और बालिकाओंको हवा, पानी और भोजनकी उत्तमताका पाठ अच्छी तरह सिखा देवें जिससे वे गंदी हवा, गंदा पानी और गंदे भोजनसे इस तरह भय खावें जैसे साँपके

पकड़नेसे डरते हैं। शरीरकी रचनामें हवा, पानी और भोजन बड़े उपकारी हैं। इन तीनोंकी उत्तमतासे शरीरकी उत्तमता होती है। जो इन तीनोंकी सँभाल नहीं रखते हैं, वे ही रोगोंके शिकार होते हैं। हमें अपनी नाक तथा अपने मुखसे अच्छी तरह जाँचकर खाना चाहिये जो प्राणीको लाभकारी हो तथा रोगकारक न हो।

---

५ व्यायाम और आत्मरक्षा।

शारीरिक शिक्षामें दूसरी आवश्यक शिक्षा व्यायाम या आत्म-रक्षाकी है। व्यायाम या कसरत करना इस लिये आवश्यक है कि शरीरके भीतर जो गंदी हवा और गंदे परमाणु हों वे निकल जावें। शरीरमें मजबूती, दिलमें फुरती, तथा हिम्मत आ जावे और यदि कभी किसी मानवसे मुकाबिला पड़ जावे, तो दाव पेंचसे आप अपनेको बचा सके, और उसे गिरा सके। व्यायामका एक लाभ अपने शरीरको बनाना है, और दूसरा लाभ अपनी जान-मालकी, कुटुम्बकी और राज्यकी, दुष्ट, अन्यायी, चोर, डाँकुओंसे रक्षा करना है।

गृहस्थोंको धन कमाना पड़ता है, अपनी स्थावर और जंगम संपत्तिकी रक्षा करनी पड़ती है और निर्बलोंको सबलोंसे बचाना पड़ता है। इस जगतमें सभी मानव नीतिवान् सरल परिणामी और सज्जन नहीं होते। बड़ा ही विचित्र जगत् है और विचित्र ही जीवोंसे भरा है। कोई मानव शिक्षित है, कोई अशिक्षित है। किसीको जुआ, चोरी, कुशील आदिकी बुरी आदतें पड़ जाती हैं। किसीको इन्द्रियोंके विषयोंकी बड़ी भारी लम्पटता होती है, जिसके लिये प्रचुर धनकी कामना हो जाती है।

उस धनके लिये उसके मनसे यह ग्लानि निकल जाती है कि हाय मैं दूसरोंका धन झूठ बोलकर या छीनकर ले रहा हूँ। दुष्ट-चोर-बदमाशोंके दिलोंमें दया नहीं होती है। उनसे बचनेके लिये गृहस्थोंमें पौरुषबल, तथा शस्त्रबल अवश्य होना चाहिये। इस लिये बालक तथा बालिकाओंको व्यायाम और आत्मरक्षाकी यथायोग्य शिक्षा देना बहुत ही जरूरी है।

बालकोंके लिये व्यायाम। एक व्यायामाशिक्षकके द्वारा व्यायामकी शिक्षा दिलानेका प्रबन्ध होना चाहिये। अखाड़ेमें दंड बैठकें करना, कुस्ती लड़ना, आदि सिखाया जावे। खुले मैदानमें दौड़ लगाना, लाठी चलाना, तलवारका उपयोग करना, ढालसे काम लेना आदि सीख लेना चाहिये। युद्धकलामें भी निपुणता प्राप्त कर लेनी चाहिये। यदि कदाचित् अपने देशपर कोई आपत्ति आवे तो उस समय सिपाही बनकर सेवा बजानी चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि जितना शरीर और मन सह सके तथा आकुलता न हो, उतना ही व्यायाम करना चाहिये। धीरे धीरे व्यायामकी वृद्धि करनी चाहिये। आजकल जो कौमें भारतमें अपनेको सभ्य व ऊँचा समझतीं हैं, जैसे वैश्य कौम, वह न तो व्यायामकी ओर ध्यान देती है और न शस्त्रविद्या सीखती है। वह समझती है कि यह काम छोटे लोगोंका है। हम बड़े हैं, हमारा काम नहीं है। यह इन लोगोंकी बड़ी भारी भूल है।

जैनियोंके पुराणोंसे प्रकट है कि जैनियोंके माननीय महापुरुष व्यायाम बराबर करते थे। कुछ दृष्टान्त नीचे दिये जाते हैं—

(१) जैन लोग मानते हैं कि भरतक्षेत्रमें हरएक कल्पकालके भागमें बारह चक्रवर्ती होते हैं। ये सब जैनधर्मी व बड़े भारी सम्राट् होते हैं। इस कालमें जो बारह हो चुके हैं, उनमेंसे एकका नाम सनत्कुमार चक्र-

वर्ती था। ये बड़े सुन्दर थे। एक दफे स्वर्गमें इन्द्रने अपनी सभामें सनत्कुमारके रूपकी बहुत बड़ी प्रशंसा की। इसपर एक देव परीक्षार्थ मध्य लोकमें आया और जब सनत्कुमार अखाड़ेमें व्यायाम कर रहे थे, तब उसने उनके मिट्टीसे सने हुए शरीरको देखकर इन्द्रके वचनको सत्य समझा कि वास्तवमें यह बहुत ही सुन्दर हैं।

(२) जैनियोंके यहाँ इस पंचमकालमें अंतिम केवलज्ञानी श्रीजम्बू कुमार वैश्य हो गये हैं, जिनका मोक्ष मथुराके 'चौरासी' नामक स्थानमें हुआ था। यह श्रीमहावीर भगवानके समयकी बात है। राजा श्रेणिक या बिम्बसार जब राजगृहमें राज्य करते थे, तब जम्बूकुमार उनकी राज-सभामें जाया करते थे। इन्होंने व्यायाम, शस्त्रविद्या, तथा युद्धकलाका वैश्य होकरके भी खूब अभ्यास किया था। एक दफा जब राजा श्रेणि-कने सभामें पूछा कि अमुक शत्रुको वश करनेके लिये कौनसा वीर पुरुष तैय्यार होता है? तब सबसे पहिले श्रीजंबूकुमार खड़े हुए और आज्ञा-नुसार सेना लेकर शत्रुपर चढ़ाई करके, उसको जीतकर, अपने अधीन बनाकर जीतके बाजे बजाते हुए लौट आये। यदि वैश्योंमें व्यायाम, या शस्त्रविद्या सीखनेका रिवाज न होता, तो जम्बूकुमार वीर कैसे होते?

(३) जैनियोंमें श्रीकुंदकुंदाचार्य बड़े भारी महात्मा योगी विक्रम संवत् ४९ में हो गये हैं। इन्होंने अपने समयसार नामक ग्रंथमें एक जगह शस्त्रविद्याके अभ्यासका संकेत किया है। वे गाथायें नीचे प्रमाण हैं—

जह णाम कोवि पुरसो णेहे भत्तो दु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाईदूण य करेदि सत्थेहि वायामं॥ २३७॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयालिवंसपिंडीओ।
सच्चिताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं॥ २३८॥

भावार्थ—जैसे कोई पुरुष तेल लगाकर बहुत मिट्टीके स्थान अर्थात् अखाड़ेमें जाकर अनेक शस्त्रोंसे व्यायाम (कसरत) करता है, ताल, तमाल, केला, बाँस, अशोक आदिके वृक्षोंको छेदता है और सचित्त अचित्त द्रव्योंका घात करता है।

इन उदाहरणोंसे प्रकट है कि व्यायाम, या शस्त्रविद्याका हर एक पुरुषको अभ्यास होना चाहिये। कारण वीरता पुरुषका गौरव है, स्व-रक्षा और पररक्षाके लिये इसकी बहुत आवश्यकता है। शरीर पुष्ट, गठीला, वीर्यवान् हो और मन उत्साही, साहसी, परोपकारी और ब्रह्मचर्य-भावसे वासित हो, इस लिये व्यायामकी शिक्षा बालकोंको अवश्य देना चाहिये।

बालिकाओंके लिये व्यायाम। बालिकाओंसे घरका काम-काज लेना उनके शरीरको परिश्रमी और व्यायामकुशल बनानेवाला है। प्रत्येक गृहस्थको पानी भरने, आटा पीसने, कूटने, बुहारी देने, और रोटी बनानेकी आवश्यकता होती है। इन कामोंमें लड़कियोंको लगा देना चाहिये। पानी भरते, आटा पीसते, बुहारी देते तथा दूसरे काम करते हुए शरीरके अंगोंको काफी परिश्रम करना पड़ता है और यही घरकी सीधी सादी कसरतें हैं। इसके सिवाय किसी व्यायाम–शिक्षिकाके द्वारा लड़कियोंके योग्य और भी कसरतें सिखानी चाहिये। उन्हें आत्मरक्षाका उपाय जो शस्त्र-विद्या है, उसे भी सिखलाना चाहिये। स्त्रियोंमें स्वयं इतनी हिम्मत चाहिये कि यदि कोई उनपर आक्रमण करे, तो वे शस्त्रबलसे अपनी रक्षा कर सकें। प्राचीन कालमें स्त्रियोंको शस्त्रविद्या सिखलाई जाती थी, जैनपुराणोंसे इसके दो तीन उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

(१) जिस समय अयोध्यामें भगवान् ऋषभदेवके पुत्र भरत चक्रवर्ती राज्य करते थे, उस समय काशीके राजा अकंपनके सुलोचना

नामकी एक कन्या थी। जब वह युवती हो गई, तब उसके लिये अनेक राजपुत्र आये। भरत चक्रवर्तीका पुत्र अर्ककीर्ति और सेनापति जयकुमार भी आया। सुलोचना मंडपमें आती है, एक एक कुमारको परखती है, और आगे बढ़ती है। जब जयकुमारको देखती है, तो वे इसकी परीक्षामें उतर जाते हैं, और उनके गलेमें वरमाला डाल देती है। इससे चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिको क्रोध हो आता है। उसके मुसाहिब इस क्रोधको और बढ़ा देते हैं। वह सेना सजकर युद्धके लिये तैयार हो जाता है और यह ठान लेता है कि इस कन्याको मैं ही ले जाऊँगा। कन्याके पिता राजा अकंपन बड़े नीतिमार्गी थे। वे सिवाय जयकुमारके और किसीको कन्या नहीं दे सकते थे। इसलिये उन्हें भी युद्धकी तैयारी करनी पड़ी; परन्तु चक्रवर्तीके पुत्रकी सेनाके साम्हने अपनी सेना कम देखकरके चिंतातुर हो घरमें लेट रहे। उस समय उनकी रानी पद्मावती आती है और उदासीका कारण पूछ कहती है कि आप चिंता छोड़ें, आपकी प्रजामें स्त्रियाँ भी युद्ध करना जानती हैं। आप आज्ञा करें तो आपकी प्रजामेंसे बहुतसी स्त्रियाँ भी लड़ेंगी और तब आपकी सेना अधिक हो जायगी। राजा अकंपनके मनमें यह बात जम गई। आज्ञा हो गई कि स्त्रियाँ भी सिपाही बन जावें। युद्ध हुआ और सत्य तथा न्यायकी विजय हुई, जैसा कि आदिपुराणमें लिखा है—

योषितोऽप्यभटायंत पाटवात् संयुगं प्रति।
ततः प्रतिबलात्तत्र भूयांसो वा पदातयः॥ ९९॥

भावार्थ—स्त्रियाँ भी अपनी चतुराईसे युद्धके लिये सुभटका काम करने लगीं। इससे शत्रुके बलसे इस बलमें पैदल सेना अधिक हो गई।

यदि कन्याओंको शस्त्रविद्या सिखानेका रिवाज़ न होता, तो वे कैसे काममें लाई जातीं?

(२) राजा दशरथकी रानी कैकेयी युद्ध-कलामें बहुत ही निपुण थी। कैकेयीके लिए भी स्वयंवर रचा गया था और उसने राजा दशरथके गलेमें वरमाला डाली थी। इसपर कुछ राजा लोग विरोध करके युद्धको तैयार हो गए थे। उस समय राजा दशरथने युद्ध किया और कैकेयीने रथका सारथीपना करके रणांगणमें ऐसी कुशलतासे रथ चलाया कि इसकी युद्धकलाके प्रभावसे ही दशरथजीकी विजय हुई।

यदि कन्याओंको व्यायाम और शस्त्रविद्या सिखानेका रिवाज न होता, तो कैकेयी युद्धकलामें चतुरता न बता सकती। देखो पद्मपुराण पर्व २४—

यस्यैतत्पांडुरच्छत्रं विभाति शशिविभ्रमं।
एतत्स्याभिमुखं कांते रथं चोदय पंडिते॥ १०६॥

एवमुक्ते तयात्यंतं धीरया वाहितो रथः।
समुच्छ्रितसितच्छत्रस्तरंगितमहाध्वजः॥ १०७॥

पूर्णेन्दुवदने ब्रूहि यत्ते वस्तु मनीषितं।
इह सम्पादयाम्यद्य प्रसन्नोऽस्मि तव प्रिये॥ १२६॥

चोदयेन्नादिविज्ञानाद्यदि नाम तथा रथं।
कथं क्रुद्धारिसंघातं विजयेहं सहोत्थितं॥ १२७॥

भावार्थ—हे प्रिये, हे पंडिते, जिसके ऊपर वह चन्द्रमाके समान सफेद छत्र है, उसकी ओर रथको चला। ऐसा कहनेपर उसने बहुत धैर्यसे अपने ध्वजावाले और सफेद छत्रवाले रथको चलाया। हे पूर्ण-चन्द्रमुखवाली, जो तेरे मनमें हो सो कह, मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ, उसे अभी पूर्ण करूँगा। यदि तू रथको अपनी चतुराईसे न चलाती, तो मैं इस एक साथ उठे हुए क्रोधित शत्रु समूहको नहीं जीत सकता।

(३) जिस समय श्रीहनुमानजीकी माता और पवनंजयकी धर्मपत्नी अंजनासुन्दरीके पवनंजयके गुप्त संसर्गसे गर्भ रह गया, तब उनकी सासने इस भेदपर विश्वास न करके अंजनाको व्यभिचारका दोष लगाकर घरसे निकाल दिया। वह अपनी सहेली वसंतमाला सहित अपने पिताके घर गई और वहाँ भी शरण न पाकर जंगलमें एक गुफामें विश्राम करने लगी। वहाँ एक सिंह आया, तब वसंतमाला अंजनाकी रक्षाके लिये, तलवार लेकर उसके चारों तरफ घूमने लगी। यह कथन प्रमाणित करता है कि वसंतमालाको तलवार चलाना सिखाया गया था और वह तलवार बाँधती थी। उस समय तलवार साथमें थी, जब वह वनमें वसंतमालाके साथ आई। देखो पद्मपुराण।

इन तीन उदाहरणोंसे यह बात साफ प्रकट है कि लड़कियोंको भी व्यायाम और शस्त्रविद्या सिखानी चाहिये। वीर महिलायें ही वीर माताएँ होती हैं, और वीर मातायें ही वीर पुत्र-पुत्रियोंको जन्म देती हैं।

स्त्रियोंको निर्बल रखना, उनको परदेके भीतर सड़ने देना, उनको ताज़ी हवा न लगने देना, उनसे काम न लेना, उनमें जाने-आनेकी और स्वरक्षाकी हिम्मत न पैदा करना, स्त्रीसमाजका ही मरण नहीं है, किन्तु सारी समाजका मरण है। क्यों कि जहाँ माताएँ निर्बल और पौरुषहीन होंगी, वहाँ सारा समाज पौरुषहीन होगा।

---

६ ब्रह्मचर्य्य या वीर्य्यरक्षा।

शारीरिक उन्नतिके लिए जैसे भोजन, पानी, हवा, तथा व्यायामकी शिक्षाकी आवश्यकता है, वैसे ही बालक बालिकाओंको ब्रह्मचर्य्य और वीर्यरक्षाकी शिक्षा भी देनी उचित है। वैद्योंका मत है कि जो भोजन किया जाता है, उसका जो सत है, या अतर है, वह वीर्य है। यह भोजन करनेके दिनसे ३० दिनके पीछे तयार होता है। इसीको शरीरका राजा कहते हैं। इसी वीर्यके कारण हाथ, पैर, छाती, सब मजबूत रहते हैं। आँखोंमें देखनेकी, कानोंमें सुननेकी और दाँतोंमें चबानेकी शक्ति वीर्यके प्रतापसे होती है। केशोंका काला रहना भी वीर्यके ऊपर निर्भर है। वीर्यका रक्षित रखना उसी तरह मूल्यवान् है, जैसे जवाहिरातको सुरक्षित रखना। जवाहिरात तो खो जानेसे शायद मिल भी जाते हैं; परंतु वीर्य्यका क्षय होनेसे फिर मिलना दुर्लभ है। वीर्यकी रक्षा करना और वीर्यको काबूमें रखकर उससे काम न लेना, बाहिरी ब्रह्मचर्य है। अंतरंगमें कामभावको न पैदा करके शीलभाव और समताभाव रखना अंतरंग ब्रह्मचर्य है।

मानव-जीवनको सफल बनानेके लिए ब्रह्मचर्य एक बड़ी न्यामत है। वीर्यरक्षाके लिए पुरुषोंको उचित है कि २० वर्षके पहिले अपना विवाह न करावें। क्योंकि उस समय तक वीर्य पक्व नहीं होता है। विवाह करनेका मुख्य उद्देश्य संतानकी प्राप्ति करना है। जैसे कच्चा बीज भूमिमें नहीं बोया जाता है, वैसे ही कच्चा और निर्बल वीर्य संतानलाभके लिये उपयोगी नहीं है। पक्का और सबल बीज ही जमकर वृक्ष होता है।

इसी तरह १६ वर्ष तक कन्याको कामभावके विकारोंसे बचाना उचित है। उसका शरीर भी १६ वर्षमें गर्भधारणके योग्य होता है।

इसी वयमें वह वीर संतानके शरीरको बनाकर उत्पन्न कर सकती है। वाग्भट्टाचार्यने अपने 'अष्टांगहृदय' नामक वैद्यक ग्रंथमें यही भाव प्रकट किया है—

पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन संगता।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि॥

वीर्यवंतं सुतं सूते ततो न्यूनाब्दयोः पुनः।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा॥

भावार्थ—जब स्त्री पूरे १६ वर्षकी हो जावे और बीस वर्षके पूर्ण पुरुषसे संगम करे, जब गर्भाशय शुद्ध हो, रक्त और शुक्र शुद्ध हो, हृदय शुद्ध हो, तब वह वीर्यवान् पुत्रको जन्म देती है। यदि दोनोंमें कोई कम उम्रके हों, तो रोगी, अल्पायु, और अभागा पुत्र हो, अथवा गर्भ ही न रहे।

इसलिए उचित है कि जब तक बालककी २० और बालिकाकी १६ वर्षकी आयु न हो जावे, तबतक माता-पिता इन दोनोंको शिक्षा देकर योग्य बनावें और तब इनकी सगाईकी चर्चा करें। माता-पिता और शिक्षक शिक्षिकाका कर्तव्य है कि वे पुत्र पुत्रियोंको ब्रह्मचर्य—रक्षाकी आवश्यकता समझा दें। उनको बतला दें कि मानव-जीवनका फल बलवान् रहनेसे ही मिलता है। बलवान् ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थको सिद्ध कर सकता है। वीर्य ही शारीरिक बलका प्रधान कारण है, इस लिए इसकी भले प्रकार रक्षा करनी चाहिये। यदि रक्षा न करोगे, तो भविष्यमें पछताना पड़ेगा। उनको समझा देना चाहिये कि, जहाँ तक विवाह न हो वहाँ तक तुम्हें मन-वचन-कायसे ब्रह्मचर्य पालना चाहिये। रातदिन ऐसे संयोगों और ऐसी संगतिमें रहना चाहिये, जिससे अपना

मन कामके वेगोंमें न फँसे। इसके लिये नीचे लिखी बातोंपर लक्ष्य देना चाहिये।

(१) कामभावको जगानेवाली बातचीत आपसमें नहीं करनी चाहिये। न ऐसी कथायें, किस्से, उपन्यास, या नोवेल पढ़ना चाहिये, जो मनमें काम-भाव जगा दें। न ऐसे नाटक तमाशे देखने चाहिये जिनके देखनेसे काम-भाव जग आवे।

(२) स्त्रियाँ पुरुषोंके और पुरुष स्त्रियोंके मनोहर अंगोंको रागभावसे न देखें। जैसे कोई स्त्री अपने पिताको, भाईको और पुत्रको देखती है, कन्याओंको उचित है कि वे उसी तरह नाना पुरुषोंको देखें। परदा रखनेकी कोई जरूरत नहीं है। परदा रखनेसे देखनेकी लालसा और भी तीव्र होती है। मनको ही साफ रखके सरलभावसे देखना चाहिये। कुमारोंको चाहिये कि वे जगतकी स्त्रियोंको माता, बहिन और पुत्रियोंके समान देखें।

(३) एकांतमें जहाँ भावोंके बिगड़नेकी संभावना हो, किसी कुमारीको किसी पुरुषके साथ, और किसी कुँआरे पुरुषको किसी स्त्रीके साथ न बैठना चाहिये न बात करनी चाहिये। सगे भाई बहिनका भी एकांतवास कामभावका जगानेवाला हो जाता है। जैसे अग्निके सम्बंधसे घी पिघल जाता है, वैसे स्त्रीके संबंधसे पुरुषका मन कामी बन जाता है।

(४) खानपान ऐसा करना चाहिये जो कामविकार पैदा न करे। सादा शुद्ध भोजन मनको पवित्र रखनेवाला है। मिठाइयोंके खानेकी आदत बहुत कम कर देनी चाहिये। साधारण नियम यही ठीक है, कि दाल, रोटी, भात, साग, दूधका भोजन किया जावे। किसी तरहके मादक पदार्थोंका भांग, तम्बाकू, आदिका सेवन न किया जावे।

(५) जहाँ तक विवाह न हो, कुमारों और कुमारियोंको अपनेको ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मानना चाहिये, और सादे शुद्ध वस्त्र ही पहिनने चाहिये, जो चित्तमें वैराग्यके कारण हों, रागको न बढ़ावें। ऐसे आभूषण भी न पहिनने चाहिये जो अपने या दूसरेके मनमें राग पैदा करें, जहाँ तक हो कोई गहना पहिना ही न जावे। यदि पहिनना ही हो, तो बहुत सादा, जो राग न पैदा करे।

(६) कुमार और कुमारीको सदा अकेले सोना चाहिये। पलंग या खाटपर न सोकर तख्त या चटाईपर सोना चाहिये। हर एकको एक दूसरेसे इतना दूर सोना चाहिये कि परस्पर शरीरका स्पर्श न हो सके और न परस्पर स्पर्श करनेका भाव ही पैदा हो। लड़कोंको भी एक दूसरेसे दूर सोना चाहिये। निकटताका सम्बंध स्पर्श करनेका भाव जाग्रत कर देता है। शरीरका स्पर्श काम जगानेका कारण हो जाता है।

(७) बहुत अच्छा हो कि जब तक विद्याभ्यास किया जावे, तब तक कुमार ब्रह्मचर्य्याश्रमोंमें और कुमारियाँ कन्या-गुरुकुलोंमें रहें। यदि ऐसा प्रबंध न हो सके, तो अपने घरमें ही जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, बहुत सावधानीसे रहें।

जैसे तपस्वी साधुको तपका साधन करते हुए वीर्यरक्षा और ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता है, वैसे ही कुमारों और कुमारिओंको विद्याका साधन करते हुए वीर्यरक्षा और ब्रह्मचर्यकी ज़रूरत है।

शारीरिक उन्नतिके लिए ब्रह्मचर्य्यकी शिक्षा बहुत लाभकारी है। इस शिक्षाको देते हुए उनके सामने पूर्व कालके और आजकलके आदर्श—ब्रह्मचर्य पालनेवाले स्त्री पुरुषोंके जीवनचरित्र रखने चाहिए।

स्त्रियोंके लिए चन्दना, अनन्तमती, ब्राह्मी, सुन्दरी, अंजना, सीता, आदिके दृष्टान्त और पुरुषोंके लिए जयकुमार, सुदर्शनसेठ, रामचन्द्र,

श्रीअकलंकदेव, भद्रबाहु श्रुतेकवली, पाँच बालब्रह्मचारी जैन तीर्थंकर (वासुपूज्य मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर), जम्बूकुमार केवली, आदिके जीवनचरित्र बताने चाहिए। जीवनचरित्रोंका बुद्धिपर बड़ा भारी असर पड़ता है।

इस तरह शारीरिक शिक्षाके लिए योग्य भोजन-पान, हवा, व्यायाम और ब्रह्मचर्य्य, इन तीन उपयोगी बातोंकी शिक्षा हरएक बालक और बालिकाको भले प्रकार देनी उचित है। जिनका शरीर बलवान्, तन्दुरुस्त, सुहावना, फुर्तीला, निरालसी, और परिश्रमी बनेगा, वे ही इस मानवजन्मके कर्तव्योंको पाल सकेंगे। शरीरकी दृढ़ता पुरुषार्थका बीज है और शरीरकी निर्बलता कायरता बढ़ानेवाली है।

---

७ वाचिक शक्ति।

वचन बोलनेकी शक्ति बहुत उपयोगी है। उसके द्वारा मनका भाव दूसरोंपर प्रकट किया जा सकता है, दूसरोंको पढ़ाया जा सकता है, उपदेश देकर अपनी सम्मतिके अनुकूल बनाया जा सकता है, हिम्मत दिलाई जा सकती है और आत्मज्ञान कराया जा सकता है। यद्यपि दो-इन्द्रिय प्राणियोंसे लेकर सभी प्राणी बोलनेकी शक्ति रखते हैं, परंतु अक्षररूप बोलनेकी प्रकट शक्ति मानवोंमें ही होती है। इस शक्तिको संस्कारित अथवा विकसित करना चाहिए। शिक्षाके विना वचनोंमें सौन्दर्य आना, उनका मर्यादारूप होना, अर्थसे पूर्ण होना, निरर्थक न होना आदि गुण नहीं आ सकते हैं। बालक तथा बालिकाओंको

वचन-शक्तिको परिष्कृत करनेकी शिक्षा देनी आवश्यक है। इसके लिए नीचे लिखी तीन बातोंकी शिक्षा होना चाहिए।

(१) **भाषाज्ञान**। जिस भाषामें शुद्ध संभाषण करना हो, उसका यथार्थ और पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। भाषा ज्ञानके लिए साहित्य और व्याकरणको भले प्रकार सीखना चाहिए। भारतवर्षकी राष्ट्रभाषा हिन्दी है; गुजराती, मराठी, बंगाली, उड़िया, कनड़ी, तामिल, तेलगू आदि अन्य प्रान्तीय भाषाएँ हैं। हर एक बालक तथा बालिकाको अपनी अपनी मातृभाषाके सिवा राष्ट्रभाषा हिन्दीका साहित्य तथा व्याकरण इतना अवश्य जानना चाहिए कि उसे उसकी कोई भी कविता या कोई भी कठिन चाह्य विषय समझमें आ सके। मातृभाषाके सिवा यदि राष्ट्रभाषा हिन्दीका सबको ज्ञान हो, तो दक्षिणी, मैसूरी, मदरासी, बंगाली आदि सब भारतवासी यहाँ तक कि अशिक्षित किसान भी एक सभामें बैठकर परस्पर विचार-विनिमय द्वारा लाभ उठा सकते हैं। हमारी समस्त शिक्षाका माध्यम भी हिन्दी ही होना उचित है। जहाँ हिन्दी मातृभाषा न हो, वहाँ प्रान्तीय भाषा शिक्षाका माध्यम हो सकती है; परंतु हिन्दी भाषा सबको अनिवार्यरूपसे सिखाई जानी चाहिए। जिससे एक भारतीयको दूसरे भारतीयसे बातचीत करनेमें कोई कठिनाई उपस्थित न हो। साहित्य और व्याकरणका ज्ञान होनेसे भावदर्शक चुने हुए शब्द बोले जा सकते हैं। वचन नम्र हितकारी और मधुर होने चाहिए। वही वचन वास्तवमें वचन कहा जा सकता है जो मधुर, सत्य, हितकारी, मर्यादारूप और थोड़े शब्दोंमें भाव प्रकट करनेवाला हो। किसी भी साहित्यके निरंतर मनन और अनुशीलनसे ऐसी योग्यता आ सकती है।

(२) **सत्य भाषण**। हर एक मनुष्यको सदा सत्य बोलना चाहिए। बालक तथा बालिकाओंको सत्य भाषणकी महिमा समझानी

चाहिए। उनको सत्य बोलनेकी आदत डलवाना चाहिए। वास्तवमें सत्य बोलना ही वचनशक्तिका मूल सदुपयोग है। वचन इसी लिए बोला जाता है कि सुननेवालेके मनमें कहनेवालेके वचनोंका ज्ञान तथा विश्वास हो जाय। जिस वचनसे सुननेवालेके मनमें विश्वास उत्पन्न न हो, वह वचन कहना निरर्थक है। जिस मनुष्यके वचनोंका जगतमें विश्वास नहीं होता वह मनुष्य मनुष्यतासे गिरा हुआ माना जाता है। हमारे वचनोंका विश्वास होगा तभी दूसरा हमारा काम कर सकेगा। असत्यके समान कोई पाप नहीं है; क्योंकि इससे हिंसाकारी भाव उत्पन्न होते हैं। जब दूसरेको धोका देकर अपना काम निकालना होता है तभी लोग झूठ बोलते हैं। हमारे असत्य वचनसे दूसरेको हानि पहुँचाई जाती है, इस लिए असत्य वचन हिंसामें ही गर्भित हैं। बालक तथा बालिकाओंको ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे उनके दिलोंमें असत्य बोलनेसे घृणा उत्पन्न हो जाय और वे झूठ बोलनेको महापातक समझने लगें। वे सत्य बोलने-हीमें अपना गौरव समझें। क्योंकि सत्यवादी सर्वत्र विश्वासपात्र समझा जाता है। वह व्यापारमें भी खूब उन्नति कर सकता है। उसके व्यापार या अन्य व्यवहारमें अन्य मनुष्योंको कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। माल वेचनेवाले या खरीदनेवाले दोनों ही सत्यवादीसे प्रसन्न रहते हैं।

मनुष्यका सबसे बड़ा आभूषण उसका सत्यवादीपन है। अनेक वस्त्रभूषणसे अलंकृत होनेपर भी असत्यवादीका कोई आदर और मूल्य नहीं होता है, परंतु जिसके पास वस्त्राभूषण नहीं है, जो साधारण वस्त्र धारण करता है परंतु हमेशा सच बोलता है वह महात्मा गाँधीके समान सर्वत्र पूजनीय समझा जाता है। उसका जगतमें विश्वास जम जाता है।

अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर रहना सत्यवादीका ही काम है। सत्य भाषणसे अनेक आपत्तियाँ टल जातीं हैं। इस जीवका परमरक्षक सत्यवचन ही है।

श्रीशुभचंद्र आचार्यने अपने ज्ञानार्णव नामक ग्रन्थमें सत्यभाषणकी बड़ी महिमा बतलाई है। वे कहते हैं:—

सूनृतं करुणाक्रान्तमविरुद्धमनाकुलम्।
अग्राम्यं गौरवाक्लिष्टं वचः शास्त्रे प्रशस्यते ॥ ५॥

अर्थात् जो वचन सत्य हो, दयासे भरा हो, विरोधरूप न हो, आकुलताकारी न हो, गँवारू न हो, गौरव तथा गंभीरता लिए हुए हो, हल्का और अशिष्ट न हो, वही वचन शास्त्रोंमें प्रशंसनीय माना गया है।

नृजन्मन्यपि यः सत्यप्रतिज्ञाप्रच्युतोऽधमः।
स केन कर्म्मणा पश्चाज्जन्मपङ्कात्तरिष्यति ॥ २५॥

भावार्थ—जो मानव इस नरजन्ममें सत्यवचन बोलनेकी प्रतिज्ञासे गिर जाता है, वह नीच है। वह और कौनसा धर्म-कर्म करेगा जिससे वह संसारकी कीचड़से निकल सकेगा ?

चन्द्रमूर्त्तिरिवानन्दं वर्द्धयन्ती जगत्त्रये।
स्वर्गिभिर्ध्रियते मूर्ध्ना कीर्तिः सत्योत्थिता नृणाम् ॥ २९॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्यभाषण करते हैं, उनका यश त्रैलोक्यमें चन्द्रमाके समान आनंददायक होता है, स्वर्गके देवता भी उसे अपने मस्तकपर चढ़ाते हैं।

एकतः सकलं पापमसत्योत्थं ततोऽन्यतः।
साम्यमेव वदन्त्यार्यास्तुलायां धृतयोस्तयोः ॥ ३३॥

भावार्थ—आर्य पुरुषोंने तराजूके एक पलड़ेपर असत्य भाषणरूपी पापको रक्खा और उसके दूसरे पलड़ेपर दूसरे सब पापोंको रक्खा। तौला तो दोनों समान हुए। वास्तवमें असत्यभाषण बड़ा पाप है।

जो मनुष्य असत्यवादी है, वह मनुष्य कहलानेका अधिकारी नहीं है। सत्यवादीका मन सदा प्रसन्न, निर्मल, और निराकुल रहता है। बालक बालिकाओंके लिए यह गुण खूब सिखा देना चाहिए।

(३) **व्याख्यान देना**। वाचिक शक्तिके विकासके लिए बालक-बालिकाओंको व्याख्यान देना सिखलाना चाहिए। अपने मनकी बात दूसरेके गले उतार देना हर एकका काम नहीं है। यह एक कला है जो कि अभ्यासके द्वारा बढ़ाई जा सकती है। जिसमें यह कला होती है, वे हज़ारों लाखों मनुष्योंको अपना अनुयायी बना लेते हैं। विना अभ्यासके यह शक्ति नहीं आती है। इस लिए बालक बालिकाओंको साप्ताहिक सभाओंके द्वारा व्याख्यान देना सिखलाना चाहिए। अध्यापकोंको चाहिए कि वे बालकोंको जिस विषयका व्याख्यान देना सिखलाना चाहें, पहले उन्हें उस विषयकी सब बातें अच्छी तरह समझा देवें, फिर उनसे अपनी स्मरण शक्तिके आधारपर वे ही बातें मौखिक कहलावें। इस प्रकार कुछ दिन अभ्यास करानेसे उन्हें व्याख्यान देना आ जावेगा।

जैनशास्त्रोंका एक सूत्र व्याख्यान देनेके सम्बन्धमें बहुत उपयोगी है। वह इस प्रकार है—

“ निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः।”

अर्थात् जब किसी पदार्थके विषयमें वर्णन करना हो तब उक्त छह बातोंका विचार करना चाहिए। इन छह बातोंका विचार कर लेनेसे उस विषयका प्रायः पूरा वर्णन हो जाता है। वे छह बातें ये हैं—

(१) **निर्देश**। जिस विषयका वर्णन करना हो पहले उसका कुछ स्वरूप वर्णन करना चाहिए, जिससे सुननेवालोंको ज्ञान हो जाय कि वह अमुक वस्तु है।

(२) **स्वामित्व** । जिसका वर्णन करना हो, उसका स्वामी, मालिक, साधन करनेवाला या अधिकारी कौन है, बतलाना चाहिए ।

(३) **साधन** । जिसका वर्णन करना हो उसका साधन क्या है, अर्थात् किस उपायसे या किस तरह वह वस्तु या बात पाई जा सकती है या सिद्ध की जा सकती है, वे सब उपाय और रीतियाँ बतलानी चाहिए ।

(४) **अधिकरण** । जिसका वर्णन करना हो वह वस्तु कहाँ किस स्थानपर मिलती है या उस बात या पदार्थको किस जगह काममें लाया जाता है, यह बतलाना चाहिए

(५) **स्थिति** । वर्णित वस्तु कितने समय तक स्थिर रहती है, उसकी मर्यादा क्या है, अथवा उसको कब तक काममें लाना चाहिए, यह सब बतलाना चाहिए ।

(६) **विधान** । वर्णित वस्तुके आवश्यक भेद बतलाना चाहिए ।

यहाँपर हम उदाहरण देकर बतलाते हैं । मान लो, हमको द्रव्यका स्वरूप बतलाना है तो हम पहले निर्देश करेंगे कि जो सत् हो, सदा पाया जावे, जिसमें गुण और पर्याय हों, जिसमें अवस्था बदलनेकी अपेक्षा पिछली अवस्थाका नाश और अगली अवस्थाका जन्म हो, तथापि वह अपने मूल स्वभावमें स्थित रहे, वह द्रव्य है ।

इस उदाहरणमें विधानको पहले कहना ठीक होगा । इस लिए द्रव्योंके भेद बतलाना चाहिए । जैन सिद्धान्तके अनुसार द्रव्य छह हैं—जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल । साथमें इनका स्वरूप भी कह देना चाहिए । जो जीनेवाला है, वह जीव है । जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाया जावे, वह पुद्गल है । जो जीव और

पुद्गलको चलते समय उदासीनताके साथ सहायक हो, वह धर्मास्तिकाय है और जो जीव पुद्गलको ठहरते समय उदासीनपने सहायक हो वह अधर्मास्तिकाय है। जो सर्व द्रव्योंको जगह दे, वह आकाश है। जो द्रव्योंके पलटनेमें सहायक हो, वह काल है। जब हम अधिकरण बतलायँगे कि ये द्रव्य कहाँ पाये जाते हैं, तब हम कहेंगे कि ये छहो द्रव्य लोकाकाशमें हर जगह पाये जाते हैं। लोकाकाशके बाहर अनंत आकाशमात्र है।

ये छह द्रव्य अनादि अनंत हैं, इस लिए हम स्थितिको बतलाते हुए कह सकते हैं कि ये सदा रहेंगे। अब विचार करना चाहिए कि इन छह द्रव्योंका स्वामी कौन है? वास्तवमें हरएक द्रव्य अपना अपना स्वामी है, तथापि व्यवहारमें संसारी जीव पुद्गलका स्वामी बन जाता है। जैसे संसारी मनुष्य कहा करते हैं कि यह हमारा तन है, यह हमारा घर है, यह हमारा गाँव है, इत्यादि।

साधारणतः जब सब द्रव्य अनादि कालसे चले आ रहे हैं, तब उनका कोई साधन नहीं है। परंतु जब हम पुद्गल और जीवके भेदोंपर दृष्टि डालते हैं, तब कह सकते हैं कि संसारी जीव कर्मोंके फलसे अनेक शरीर पाते हैं और तदनुसार वे सुख तथा दुख भोगते हैं। वे आत्मध्यानके प्रतापसे मुक्त हो सकते हैं, पुद्गल आपसमें मिलकर स्कंध बनते हैं और स्कंधोंके टूटनेसें परमाणु बनते हैं, इत्यादि। इस तरह यदि हम इस सूत्रके अनुसार छह अंगोंपर विचार करके द्रव्य विषयपर कुछ कहेंगे या लिखेंगे, तो हमारा वह भाषण या लेख उचित समझने योग्य हो जायगा।

अब हम दूसरा उदाहरण लिखते हैं। मान लो कि हमको परोपकारपर भाषण करना है, तो हम पहले निर्देश अर्थात् उसका स्वरूप वर्णन करेंगे। बिना किसी स्वार्थके दूसरेके कष्टोंको उचित उपायके द्वारा दूर

करना परोपकार कहलाता है। फिर हम स्वामी कहेंगे। परोपकार करने-वाला दयावान्, उदारचित्त, विवेकी, परिश्रमी तथा सहनशील होना चाहिए। फिर साधन वर्णन करते हुए कहेंगे कि पात्रके अनुसार आहार, ओषधि, अभय तथा विद्यादान देना परोपकारके साधन हैं। इसके लिए तन, मन, धन और वचन द्वारा विद्यालय, औषधालय, अनाथालय, आश्रय-स्थान आदि खुलवाना चाहिए। विद्यादानके लिए योग्य छात्रोंको छात्र-वृत्ति देना, पुस्तकालय स्थापित करवाना तथा पुस्तकोंका प्रचार करना चाहिए। अधिकरणका विचार करते समय हमें यह बतलाना चाहिए कि मनुष्यको किस जगह कौनसा उपकार करना उचित है। उदाहरणार्थ युद्धके समय घायल सिपाहियोंकी सेवा करना, शरणागतकी रक्षा करना, आततायियोंके हाथसे बालक, स्त्री, वृद्ध तथा अशक्त पुरुषोंको बचाना, धर्मस्थानमें धर्मज्ञान देना, व्यापारके स्थानमें व्यापार बतलाकर या व्यापार करवाकर बेकार लोगोंको काममें लगाना, इत्यादि। इस तरह इस प्रकरणमें कहाँ किस तरह उपकार करना उचित है, यह बतलाना चाहिए। आगे स्थितिका वर्णन करते हुए हम कह सकते हैं कि अपनी शक्तिके अनुसार जिसको जितने समय तक उपकारकी आवश्यकता हो, उसका उतने ही समय तक उपकार करना चाहिए। रोगीकी तभी तक सेवा करनी उचित है जब तक उसका रोग दूर होकर वह पुनः काम करने योग्य न हो जाय। शिष्यको तब तक विद्यादान देना चाहिए, जब तक वह प्रवीण न हो जाय। विधानमें उपकारके भेद वर्णित करते हुए हम कह सकते हैं कि परोपकारके मुख्य दो भेद हैं, एक भाव परोपकार, दूसरा द्रव्य परोपकार। अपने भावोंमें नित्य परोपकारकी भावना रखना भाव परोपकार है और तन, मन, धन तथा वचनसे परोपकार करना द्रव्य परोपकार है।

निर्देशके कथनमें हम यह भी कह सकते हैं कि परोपकार वह वस्तु है जिससे अपना भाव शुभ होनेसे भीतर सुख होता है, पुण्यकर्मका बँध होता है और दूसरोंको लाभ पहुँचता है। इस प्रकार हम उक्त सूत्रमें वर्णित रीतिके अनुसार प्रत्येक विषयपर भाषण दे सकते हैं। विद्यार्थियोंको भाषण देनेकी ये सब बातें सिखाना चाहिए। अभ्यास करते करते ज्यों ज्यों उनका ज्ञान बढ़ता जावेगा, त्यों त्यों वे अनेक विषयोंपर सारपूर्ण गंभीर भाषण दे सकेंगे।

भाषणकर्त्ताको जिस विषयपर भाषण करना हो, उस विषयको निम्न-लिखित चार प्रकारसे भलीभाँति परिपक्व कर लेना चाहिए—(१) तद्विषयक ग्रंथोंको पढ़ना और उनका मनन करना, (२) तत्सम्बन्धी जो शंकाएँ हों उन्हें दूसरे विद्वानोंसे पूछ कर समाधान करना, (३) उस विषयको वारंवार सोच कर हृदयमें अच्छी तरह जमा लेना, (४) उस विषयसे संबंध रखने वाली आवश्यक बातें कंठस्थ कर लेना। जो वक्ता उक्त चार प्रकारसे अपने भाषणके विषयको परिपक्व कर लेता है, वह अपने वर्णित विषयको दूसरोंको अच्छी तरह समझा सकता है और उसके भाषणका प्रभाव श्रोताओंपर पड़ता है।

इस तरह विचारपूर्वक देखनेसे पाठकोंको ज्ञात होगा कि वाचिक शक्ति कितनी अमूल्य है और इसको शिक्षा द्वारा संस्कारित करना कितना अधिक आवश्यक है। वाचिक शक्तिके विकाशके लिए भाषा-ज्ञान, सत्यभाषण, और भाषण देनेकी शिक्षा देना अति आवश्यक है।

---

८ मानसिक शक्ति ।

मनुष्योंके शरीरमें आत्मा राजा और मन मंत्री है। मनुष्योंके समस्त कार्य इसी मन-मंत्रीद्वारा परिचालित होते हैं। आजकल संसारमें बुद्धिको चकित करनेवाले जितने आश्चर्यजनक आविष्कार और उन्नतिके कार्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे सब मनुष्योंकी मानसिक शक्तिके ही मधुर फल हैं। शास्त्रमें लिखा है कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।" अर्थात् मन ही मनुष्योंके बंधन और मोक्षका कारण है। कहनेका तात्पर्य यह कि सब प्रकारकी आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति मनको सुसंस्कृत करनेसे हो सकती है। यह शक्ति शारीरिक और वाचिक शक्तिसे श्रेष्ठ है। अथच उन दोनोंसे अधिक उपयोगी भी है। इस लिए मनुष्योंको इस शक्तिको सुदृढ़ और सुसंस्कृत करनेके लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

मनुष्योंको अपने सब कार्य विचारपूर्वक करना चाहिए। विचार करनेपर जो कार्य हानिकारक समझ पड़े, उन्हें त्यागना और जो लाभजनक दिखाई दें उन्हें ग्रहण करना चाहिए। जो मनुष्य किसी भी कामको करनेके पहले एक बार अच्छी तरह सोच लेता है, उसे फिर पीछे पछताना नहीं पड़ता है।

बालक बालिकाओंको भी प्रत्येक काम विचारपूर्वक करनेकी शिक्षा देनी चाहिए। मानसिक विकासके लिए तीन बातोंकी शिक्षाकी आवश्यकता है—(१) नीतिशास्त्रका ज्ञान, (२) अनेक विद्याओंका पूर्ण ज्ञान (३) लेख और निबन्ध लिखनेका अभ्यास।

१ नीतिशास्त्रका ज्ञान । इस जगतमें प्रत्येक मनुष्यको बहुत मनुष्योंके साथ काम-काज, लेन-देन या व्यवहार करना पड़ता है । जिन नियमोंपर चलनेसे आपसमें प्रेमपूर्वक व्यवहार हो, परस्पर एक दूसरेको कष्ट न हो, तथा समय और शक्तिका सदुपयोग हो, उन सब नियमोंको जान लेना नीतिशास्त्रका ज्ञान कहलाता है । नीतिशास्त्रके ज्ञानसे व्यवहारमें कुशलता आती है । हितोपदेशमें लिखा है—

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
ग्रहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥

अर्थात्—बुद्धिमानको उचित है कि वह जब विद्या पढ़े या धन कमावे, तब यह समझे कि मैं न कभी बूढ़ा होऊँगा और न कभी मरूँगा, परंतु धर्मका आचरण यह समझकर करे कि मृत्यु हर समय मेरी चोटी पकड़े हुए है, न जाने कब गला दबा दे । नीतिशास्त्रके कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थोंके नाम आगे दिये जाते हैं । इन ग्रन्थोंका अवलोकन करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है ।

(१) हितोपदेश, (२) पंचतंत्र, (३) नीतिवाक्यामृत, (४) कौटिल्यका अर्थशास्त्र, (५) क्षत्रचूड़ामणि काव्य, (६) चाणक्यनीति, (७) कामन्दकीय नीतिसार आदि ।

राजनीतिको भी व्यवहारमें जानना आवश्यक है । प्राचीन नीतिशास्त्रोंके साथ साथ राज्यकी वर्तमान नीतिका भी ज्ञान होना चाहिए । जिस कानूनके द्वारा अपराधियोंको अपराधी समझा जाता है, उसका जानना भी आवश्यक है ।

२ अनेक विद्याओंका ज्ञान । मनका काम विचार करना है । पुस्तकोंसे जितना ज्ञान मिल सके उतना उनसे ग्रहण करना चाहिए ।

मनुष्य किसी एक या दो विषयोंका ही पूर्ण ज्ञाता हो सकता है, इसलिए प्रत्येक मनुष्यको भली भाँति विचार करके यह स्थिर करना चाहिए कि उसे किस विषयका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना है। पुरुषोंके लिए उपजीविका प्राप्त करनेका प्रश्न पहला है। इस लिए प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर चुकनेके पश्चात् हमको यह देखना चाहिए कि बालककी रुचि किस तरफ है। जिस विषयकी ओर उसकी रुचि झुकती हुई मालूम पड़े, उसी विषयकी उसे पूर्ण शिक्षा देनी चाहिए। जैसे हमें किसी बालकको व्यापारी बनाना है, और उसकी रुचि व्यापारकी ओर है तो उसे किसी चतुर व्यापारीके पास रखकर व्यापारसम्बन्धी हिसाब–किताब, लेन–देन, बही–खाता तेजी–मंदीका ज्ञान आदि तत्सम्बन्धी समस्त बातें सिखलाना चाहिए। यदि बालककी रुचि शिल्पकलाकी ओर झुकती हुई जान पड़े, तो उसे शिल्पकलाकी शिक्षा देनी चाहिए। जिससे वह उस विद्यामें पूर्ण निष्णात होकर उससे सम्मानपूर्वक अपनी आजीविका चला सके और उससे देशको लाभ पहुँचावे। यदि उसको वर्तमान युगका विज्ञानवेत्ता बनाना हो, तो उसे सायन्स (विज्ञान) की पूर्ण शिक्षा दी जानी चाहिए। आजीविकाके सिवा मनोरंजन आदिके लिए भी कलाओंके सीखनेकी आवश्यकता है। यथा कविता बनाना, गाना–बजाना, चित्र खींचना आदि। ये कलाएँ मनोरंजनके सिवा और भी कई दृष्टियोंसे उपयोगी हैं। इन विषयोंका जितना अधिक ज्ञान बालक-बालिकाओंको दिया जायगा, उनका आगामी संसार उतना ही सरल और सुखमय बनेगा।

जगत्में अनेक विद्याएँ और कलाएँ हैं। प्रत्येक मनुष्य सभी विद्याओं और कलाओंमें पारंगत नहीं हो सकता है। किसी खास विषयमें पारंगत होना ही जीवनकी सफलता है। अपने देशमें विद्या सीखनेका जितना

साधन हो, उसे प्राप्त करके उस विद्यामें दक्षता या विशेष ज्ञान प्राप्त करनेके लिए विदेश जाना चाहिए। ज्ञानप्राप्तिके लिए हर प्रकारका उद्यम करना तथा कष्ट सहना उचित है। शिक्षा कहीं भी ग्रहण की जावे—विद्यार्थियोंको दुर्गुणोंसे सदा बचे रहना चाहिए। मादक पदार्थोंका व्यवहार उन्हें कभी भूलकर भी न करना चाहिए, मांसभक्षणसे बचना चाहिए और परस्त्रीसेवनका विचार तो उन्हें कभी स्वप्नमें भी न करना चाहिए। जो मनुष्य इन तीनों बातोंसे बचना चाहे वह बच सकता है। प्रयत्नसे क्या सिद्ध नहीं होता ? सदाचारी बनकर विद्या सम्पादन करना चाहिए। पश्चिमी देशोंने विज्ञानमें आश्चर्यजनक उन्नति की है। इस विज्ञानको सीखना प्रगतिशील पुरुषार्थी पुरुषका लक्षण है।

लड़कियोंको भी सब विद्याएँ सीखनेका अधिकार है। प्रथम तो उनको गृहसम्बन्धी आवश्यक कामोंमें निपुण बनना चाहिए। यथा रसोई बनाना, गृह स्वच्छ रखना, अपने शरीरको तन्दुरुस्त रखना, शिशुपालन, हस्तकौशलके काम, गृहचिकित्सा तथा गृहप्रबन्ध आदि। जब वे इन सब कामोंमें चतुर हो जावें और उनको आगे पढ़नेका उत्साह हो, तब उन्हें अपने इच्छित विषयकी उच्च शिक्षा देनी चाहिए। स्त्रियोंकी उच्च शिक्षाके लिए संस्कृत, संगीत, चित्रकला, वैद्यक, डाक्टरी, राजनीति, युद्धकला और राज्यप्रबंध आदि विषय उपयोगी कहे जा सकते हैं। पुरुषसमाजको जिन जिन विद्याओंको पढ़नेका अधिकार है। लड़कियोंको भी उन सब विद्याओंके पढ़नेका अधिकार है। स्त्री हो या पुरुष प्रत्येकको उतनी ही शिक्षा प्राप्त करना चाहिए जितनी शिक्षा प्राप्त करनेमें उसका शारीरिक स्वास्थ्य न बिगड़ने पावे। शिक्षासे सुसंस्कृत होनेपर ही स्त्रियाँ धीर, गंभीर, विचारशील तथा कार्यदक्ष हो सकती हैं। स्त्री-समाजको पुरुषोंकी बराबरीमें लानेके लिए उसे शिक्षित बनानेकी नितान्त आवश्यकता है।

(३) **निबन्ध लिखना।** मानसिक शक्तिके विकासके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षाप्राप्त बालक-बालिकाएँ अनेक विषयोंपर निबन्ध लिखनेका अभ्यास करें। लेख लिखते समय लिखनेवालेको अपने मनसे बहुत कुछ विचार करना पड़ता है, तभी उनका लेख पठनीय होता है। छात्रोंको अपना अभ्यास बढ़ानेके लिए अनेक सामयिक पत्रोंमें लेख भेजना चाहिए, विशेष कर बालोपयोगी पत्रोंमें। लेख लिखनेका अभ्यास हो जानेपर अनेक उपयोगी पुस्तकें भी लिखी जा सकती हैं। मानसिक शक्तिको उन्नत बनानेके लिए कविता या लेखादि लिखनेका अभ्यास करना उत्तम साधन है। उपरि लिखित तीन विषयोंपर लक्ष्य रखकर अभ्यास कराया जाय तो बालक-बालिकाओंकी मानसिकशक्ति परिवर्द्धित की जा सकती है। मनसे सोची हुई एक अच्छी बातसे करोड़ों आदमि-योंका उपकार होता है। जो काम वाचिक तथा शारीरिक शक्तिसे नहीं होता है, वह काम मानसिक शक्तिसे सहज ही सिद्ध हो जाता है। इस लिए मानसिक शिक्षाकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

९—आत्मिक शक्ति।

मानवोंमें चौथी अपूर्व शक्ति आत्माकी है। यह बड़ी अमूल्य है। इस शक्तिके आधारसे ही शरीर वचन और मनकी शक्तियाँ काम करती हैं। इस शक्तिके पृथक् होते ही शरीर जड़ पदार्थ मात्र रह जाता है। वचन और मनकी शक्तियाँ लुप्त हो जाती हैं। आत्मिक-शक्तिको पहिचानना और उसको प्रखर बनाना मनुष्यजन्मका मुख्य कर्तव्य है। जो माता पिता या गुरु बालक बालिकाओंको आत्मोन्नतिका मार्ग नहीं

बतलाते हैं, वे उनके हितैषी नहीं, वरन् शत्रु हैं। मानव-जीवनको सुख शांतिमय बनानेवाला एकमात्र आत्मज्ञान ही है। विषयोंकी भयानक चाह-दाहको मिटानेवाला यह आत्मोन्नतिका शान्तिमय उपवन है। आत्म-ज्ञानके बिना सच्चा सुख और सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिए आत्मज्ञान प्राप्त करानेवाली शिक्षा अवश्य ग्रहण करना चाहिए। यही सच्ची धार्मिक शिक्षा है। इस शिक्षाको ग्रहण किए बिना कोई मनुष्य मनुष्य नहीं कहला सकता। आत्मज्ञानके बिना वह नररूपधारी एक पशु-मात्र है। इसलिए विद्यार्थियोंको इस विषयकी शिक्षा अवश्य देना चाहिए और उनके हृदयमें विद्यार्थी-अवस्थाहीसे आत्मज्ञानसम्बन्धी कल्याणकारी जिज्ञासा उत्पन्न कर देनी चाहिए।

आत्मज्ञान या आत्माके मननसे बड़े बड़े लाभ होते हैं। उसके प्रभा-वसे हमारा संचित पिछला पाप कट जाता है, पुण्यकी वृद्धि होती है, सुख और शांतिका अनुभव होता है, आत्मामें वीर्यकी अधिकता होती है और बड़ेसे बड़े दु:खोंसे भी मन नहीं घबड़ाता है। इसके सिवा भविष्यजी-वन भी साताकारी प्राप्त होता है।

आत्माका स्वरूप। पहले यह जानना उचित है कि आत्मा क्या वस्तु है? 'अतति जानाति इति आत्मा।' जो जाने उसे आत्मा कहते हैं। बालक बालिकाओंको यह बात अच्छी तरह समझा देनी चाहिए आत्माका स्वरूप समझानेके लिए किसी बालकको एक आगकी चिन-गारी छुआकर पूछे—"तुम्हें इसका स्पर्श कैसा मालूम हुआ?" वह कहेगा—"गरम।" फिर उसे एक लड्डु खानेको देकर पूछे—"इसका स्वाद कैसा है?" वह उत्तर देगा—"मीठा।" फिर उसे एक फूल सूँघनेको दे और पूछे तो वह कहेगा "यह खुशबूदार है।"

इसके पश्चात् उसे एक लाल रंगका कागज़ दिखलाकर पूछे—"यह कौनसा रंग है?" बालक तत्काल कह उठेगा—"लाल।" इसी तरह फिर उसे गानेकी एक सुरीली आवाज़ सुनाकर पूछे—"कैसी आवाज़ है?" वह कहेगा—"बड़ी ही सुहावनी है।" फिर पूछना चाहिए कि "हे बालक, तूने आगकी गर्मी कैसे जानी?" वह कहेगा कि "हाथसे छूकर।" "लड्डूको मीठा कैसे जाना?" वह उत्तर देगा—"जीभसे चखकर।" "फूलकी सुगंधि कैसे जानी?" वह कहेगा—"नाकसे सूँघकर।" इसी तरह वह कागजके रंगको आँखसे देखकर और सुरीली आवाज़को कानसे सुनकर बतलावेगा। इतना पूछ चुकनेपर बालकसे फिर पूछे—"हे बालक, तू कहता है कि मैंने हाथसे छूकर गर्मी, जीभसे चखकर स्वाद, नाकसे सूँघकर गंध, आँखसे देखकर वर्ण और कानसे सुनकर शब्दको जाना है, अब यह बतला कि तू जाननेवाला कौन है? जिनके द्वारा जाना वे तो जाननेके साधन हुए। जैसे हमने किसीको लाठीसे मारा, तो मारनेवाले हम हुए और लाठी मारनेका साधन हुई। इसी तरह ये पाँचों इन्द्रियाँ निमित्त या साधन मात्र हैं, इनके द्वारा रूप, रंग, स्वाद आदि जाना जाता है। अब तू अच्छी तरह सोचकर बतला कि जाननेवाला कौन है?" बालकको कुछ समय तक सोचने देना चाहिए। जब वह इसका कुछ उत्तर न दे सके, तब उसे बतला देना चाहिए कि तेरे शरीरके भीतर एक जाननेवाला है, जिसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा ही पाँचों इन्द्रियोंके द्वारा रूप रस गंध आदि अनुभव किया करती है। ज्ञान उसका स्वभाव है। जब आत्मा शरीरसे पृथक् हो जाती है—चली जाती है, तब शरीरमें नाक, कान, आँख आदि इन्द्रियाँ मौजूद रहनेपर भी उनमें सूँघने, सुनने और देखने आदिकी शक्ति नहीं रहती है। क्यों कि जब

जाननेवाला भोक्ता पुरुष (आत्मा) ही नहीं है, तब उनका अनुभव कौन करे ?

इस प्रकार अनेक दृष्टान्तों द्वारा बालकोंके मनमें यह बात जमा देनी चाहिए कि ज्ञानस्वभाव आत्माही तुम हो, यह शरीर तो आत्माके रहनेका एक मकान मात्र है। बालकोंके सामने एक मिट्टीका पुतला खड़ा करे और फिर बालक और मिट्टीके पुतलेको एक एक थप्पड़ मारे। थप्पड़के लगते ही बालक रोने लगेगा और मिट्टीका पुतला ज्योंका त्यों खड़ा रहेगा, थप्पड़ मारनेका उसपर कुछ असर न होगा। बस इस-परसे अध्यापकको समझाना चाहिए कि देखो, यह बालक इसलिए दुखी हुआ कि यह जीव है। इसके भीतर एक ऐसी शक्ति है जो दुनि-याके सुख-दुःख और भली-बुरी सब बातोंका अनुभव करती है। बिना अपराध मारनेके कारण उसे दुख हुआ, परंतु मिट्टीका पुतला ज्ञानशून्य है। उसके भीतर अनुभव करनेवाली कोई शक्ति नहीं है। इसलिए इस थप्पड़ मारनेका उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

जब बालककी समझमें यह बात आ जावे कि जाननेवाला आत्मा है न कि शरीर, तब उसको यह बतलाना चाहिए कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह सब कुछ जान सकती है; परन्तु उसके ऊपर अज्ञानका परदा पड़ा हुआ है, इस कारण उसके जाननेकी शक्ति कुंठित हो गई है, उसके ज्ञानका प्रकाश चारों ओर फैलनेसे रुका हुआ है। इस आत्मा-पर पड़ा हुआ अज्ञानका परदा ज्यों ज्यों बिरल होता जाता है, ज्यों ज्यों हटता जाता है, त्यों त्यों ज्ञान प्रकट होता जाता है। ज्ञानको कोई देता नहीं है, वह अपने आप आत्मामें प्रकट होता है। यदि ज्ञान आदान–प्रदान या लेने देनेकी वस्तु होती, तो ज्ञानदाताका ज्ञान घटता और पानेवालेको मिलता, परंतु ऐसा नहीं होता है।

ज्ञान देनेवाले अध्यापकका ज्ञान भी बढ़ता है और सीखनेवालेका भी। जब कोई देता या लेता नहीं है, तब यही बात सिद्ध होती है कि ज्ञान आत्माहीमें भरा हुआ है। उसपरसे अज्ञानका परदा जितना जितना हटता जाता है, उतना उतना ज्ञानका प्रकाश बढ़ता जाता है। दृष्टान्तस्वरूप यह समझावे कि सफ़ेद कपड़ा जब नया होता है, तब वह बिलकुल स्वच्छ और सफ़ेद होता है। परंतु उसे व्यवहारमें लानेसे उसपर मैल चढ़ जाता है और वह मैला हो जाता है। उस मैले कपड़ेको ज्यों ज्यों धोओ—साबुन लगाओ—त्यों त्यों वह साफ़ होता जाता है। उसका उजलापन निकलता आता है। इसी प्रकार आत्मा परसे जितना अज्ञानरूपी मैल धुलता जायगा, वह उतनी ही उज्ज्वल, उतनी ही प्रखर और ज्ञानस्वरूप होती जायगी। इस तरह जब बालककी समझमें आ जावे कि मेरे भीतर जो जाननेवाला है वह आत्मा है और उसमें पूर्ण ज्ञान भरा हुआ है, तब उसे यह बतलाना चाहिए कि आत्माका स्वभाव क्रोध, मान, माया और लोभ नहीं है; किन्तु वह शान्तिस्वरूप है। यह बात भी बालकोंके दिलपर दृष्टान्तद्वारा बिठाई जा सकती है। मान लो, किसी कक्षामें दश छात्र हैं। पढ़ानेवाले मास्टरको उन्हें यह समझाना है कि क्रोध आत्माका स्वभाव नहीं है। मास्टर किसी विद्यार्थीको बिना अपराधके एक बेंत मार दे। बिना कारण पिटा हुआ समझकर उस विद्यार्थीके मनमें क्रोध उत्पन्न होगा और वह रोने लगेगा। इसी समय मास्टर कोई नया विषय लड़कोंको समझाने लगे। विषय समझा चुकनेपर जब वह सब छात्रोंसे पूँछेगा कि तुम इस विषयको समझ गए? तब उस बिनाकारण पिटे हुए विद्यार्थीको छोड़कर बाकी ९ विद्यार्थी कहेंगे कि—"हाँ समझ गए।" वह पिटा हुआ विद्यार्थी जो क्रोधके आवेशमें रो रहा था, कुछ उत्तर न दे सकेगा। तब

मास्टर सब लड़कोंको समझावेगा कि हे विद्यार्थियो, देखो, क्रोध ज्ञानका शत्रु है। इस विद्यार्थीको विनाकारण मारनेका मेरा हेतु यही था कि तुम सबको क्रोधका कडुवा फल विदित हो जाय। तुम सब विषयको समझ गए, क्यों कि तुममें शान्तभाव था, और यह नहीं समझा, क्यों कि क्रोधके कारण इसकी ज्ञानशक्ति कुंठित हो गई थी। इससे यह सिद्ध हुआ कि क्रोध ज्ञानका शत्रु है। वह आत्माका स्वभाव नहीं है। आत्माका स्वभाव शान्त है, क्यों कि शान्तभावसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उससे सब कार्य भले प्रकार सिद्ध होते हैं। इसी तरह मान भी ज्ञानका शत्रु है। इस बातको समझानेके लिए अभिमानी विद्यार्थीका दृष्टान्त बस है। जिस विद्यार्थीको अपनी होशयारीका घमंड होता है और जो इसी कारण पुस्तक देखनेकी जरूरत नहीं समझता है, देखा जाता है वह परीक्षाके समय बहुधा असफल हो जाता है। मानी आदमीका मन कठोर होता है, वह दूसरोंसे पूछनेमें अपना अपमान समझता है, इस कारण वह गुरुसे विद्या नहीं पा सकता है। जो शिष्य विनयवान् होता है, वही विद्या सीखता है। मान बुद्धिको बिगाड़ देता है, इसलिए क्रोध जैसे आत्माका स्वभाव नहीं है वैसे मान भी आत्माका स्वभाव नहीं है। माया भी ज्ञानकी विरोधिनी है। जब किसीको चोरी करके धन पैदा करनेकी इच्छा होती है, तब वह असत्यवादी बनकर अत्याचार करता है। वह ज्ञानी होकर भी उस समय यह भूल जाता है कि किसीको ठगनेकी बात सोचना भी हिंसा है। क्यों कि माया भी क्रोधके समान ज्ञानको धुँधला कर देती है। इससे सिद्ध हुआ कि माया भी आत्माका स्वभाव नहीं है। इसी तरह लोभ भी ज्ञानका शत्रु है। एक विद्यार्थीको किसी दावतमें जाकर मिठाई खानेका लोभ है। वह अपने अध्यापकसे दावतमें जानेके लिए छुट्टी माँगता है, परन्तु अध्यापक छुट्टी देनेसे इन्कार कर देता

है। तब उस विद्यार्थीका लोभ उसके ज्ञानको इतना मैला कर देता है कि उसका मन पढ़नेमें नहीं लगता है और वह मास्टरके समझाए हुए विषयको नहीं समझता है। इस प्रकारके अनेक दृष्टान्त देकर बालक बालिकाओंके चित्तमें यह बात भली भाँति जमा देनी चाहिए कि क्रोधादि आत्माके स्वभाव नहीं हैं, किन्तु क्षमा, मृदुता, सरलता, शौच और शान्त भाव (Peacefulness) आत्माका स्वभाव है।

आत्माका तीसरा गुण सुख है। आत्मा सुखका भंडार है और उसका यह सुख पराधीन नहीं है। सांसारिक जितने सुख हैं, वे सब इन्द्रियोंके विषय भोगके अधीन हैं; परन्तु आत्माका सुख सच्चा सुख है, वह किसीके अधीन नहीं है, बल्कि सुख उसका स्वभाव ही है। विद्यार्थियों-को यह बात इस प्रकार समझानी चाहिए। दो छात्रोंको पास बिठाकर उनमेंसे एकको पीटे। जो विद्यार्थी पीटा जायगा, वह मनमें दुखित होकर रोने लगेगा। कुछ समयके पश्चात् दोनोंसे पूछे "तुम दोनोंमेंसे कौन सुखी था और कौन दुखी?" तब जिसके मनमें शांत भाव था वह कह देगा कि मैं सुखी था, परन्तु जिसके मनमें क्रोध था वह कहेगा कि मैं दुखी था। बस, उनको समझावे कि जैसे शांत भाव आत्माका स्वभाव है वैसे सुख भी उसका स्वभाव है। क्रोधने आकर जैसे शांत भावको बिगाड़ा, वैसे सुखको भी नष्ट कर दिया।

हमें यह भी समझा देना चाहिए कि जब हमारे मनमें दया होती है और हम दुःखितोंके कष्ट निवारण करते हैं, उस समय हमें जो सुख प्राप्त होता है वह सुख वही है जो आत्माका निजी स्वभाव है। एक गरीब आदमी जो भूखसे तड़प रहा है, उसको जब दयापूर्वक भोजन दिया जाता है तब देनेवालेके मनमें एक प्रकारके सुखका अनुभव होता

है। कोई आदमी गाड़ी परसे गिर पड़ा हो, उसको उठाकर उसकी सेवा करते समय हमारा मन प्रसन्न होता है। परोपकार करते समय मनमें जिस सुखका अनुभव होता है, वह सुख इन्द्रियोंके भोगका नहीं है, वह सुख भीतरसे उत्पन्न होता है और वह आत्माका स्वभाव है। आत्मा परसे जितना मोह हटता है उतना ही सुख झलकता है। जो दान या परोपकार करते हैं उनको मोह कुछ न कुछ कम करना पड़ता है। जितने अंशमें मोह छूटता है उतने अंशमें सुख प्रकट होता है। इस प्रकारके अनेक दृष्टान्त देकर बालकोंको समझाया जा सकता है कि आत्माका स्वभाव आनन्दस्वरूप है।

फिर छात्रोंको यह बतलाना चाहिए कि आत्मा जड़ परमाणुसे भिन्न है। जड़ परमाणुमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाया जाता है, इस लिए उसे मूर्त्तिक कहते हैं। जैसे परमाणुओंसे बने हुए आमको हम छू सकते हैं, चख सकते हैं, सूँघ सकते हैं और देख भी सकते हैं, इस लिए वह मूर्तिक है। परंतु हम आत्माको न छू सकते हैं, न चख सकते हैं, न सूँघ सकते हैं और न देख सकते हैं; क्योंकि आत्मामें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण नहीं हैं, इस लिए आत्मा अमूर्त्तिक है। ऐसा अमूर्त्तिक पदार्थ जिसमें सब कुछ जाननेकी शक्ति है, जो शांत स्वभावी है, जो आनन्दमय है वह कहाँ है? इसका उत्तर यह होगा कि वह आत्मा हरएक शरीरमें व्याप्त रहता है, वह शरीर भरके सुख दुखका अनुभव करता है। यदि पैरमें चींटी काटे तो सारा शरीर काँप जाता है, यदि हाथमें काटे तो भी कष्टका भान होता है। यदि कोई अच्छा स्वादिष्ट भोजन किया जाता है, तो सारे शरीरको हर्ष-सा माल्म होता है। यदि हमारे पैर, मस्तक, पेट, और हाथपर दश बीस मक्खियाँ आकर बैठ जावें और एक साथ काटने लगें,

तो हमें उन सबके काटनेका कष्ट एक साथ होता है। किन्तु यदि हमारे शरीरसे दो इंचकी दूरीपर भी कोई काटनेवाला कीड़ा बैठा हो, तो उसका हमें कुछ ज्ञान नहीं होता है। इस लिए यह सिद्ध होता है कि आत्मा शरीरके आकारके समान आकार रखता है। इस आत्मामें यह भी गुण है कि वह जिस शरीरमें जाता है उस शरीरके आकारके प्रमाणसे छोटा या बड़ा हो जाता है। यद्यपि इसका असली आकार इतना बड़ा है, जितना बड़ा यह लोक है।

बालकोंको यह बतला देना चाहिए कि जिस आत्माका स्वभाव बतलाया गया है, वह तुम्हीं हो और तुम्हारा आकार उतना ही बड़ा है जितना बड़ा कि तुम्हारा शरीर है। बहुतसे उदाहरणोंके द्वारा उनके चित्तपर यह बात जमा देनी चाहिये कि शरीर एक मकान है और उसमें रहनेवाला,—सुखदुखका अनुभव करनेवाला पदार्थ आत्मा है। आत्माका असली स्वभाव ज्ञानवान्, शान्त, आनन्दरूप और अमूर्त्तिक है। इसके अतिरिक्त उसी समय यह भी बतलाना चाहिए कि परमेश्वर, भगवान् या परमात्माका भी ऐसा ही स्वरूप है। हम संसारी आत्मा हैं, हमारे साथ पाप—पुण्य कर्मका बन्धन है। हमारी आत्मापर अज्ञानका आवरण पड़ा हुआ है, इससे हम मलीन हैं। परमात्मा पवित्र आत्माको कहते हैं। यदि हमारी आत्माका मैल कट जाय, उसपरसे अज्ञानका आवरण हट जाय, तो हम भी जन्म-मरणके पचड़ेसे छूटकर परमात्मा बन सकते हैं।

जब बालक बालिकाओंके ध्यानमें आत्माका स्वरूप बस जावे, तब उनको कुछ ऐसी रीतियाँ बतानी चाहिए जिनसे उनका मन आत्माके गुणोंमें रमनेका अभ्यासी हो जाय। इसके लिए निम्न लिखित कामोंका अभ्यास करना चाहिए।

(१) **परमात्माकी भक्ति और उसके गुणोंकी पूजा।** पूजकके सामने पूज्य होनेसे पूजकका मन उसकी भक्ति और पूजामें खूब लगता है। वास्तवमें पूजने योग्य वे आदर्श आत्माएँ हैं, जिन्होंने अपनी आत्माको पवित्र किया है। ऐसे महापुरुष स्वयं सामने हों या उनकी ध्यानाकार शान्त मूर्तियाँ सामने हों, उनसे भक्तोंके हृदयको शान्ति मिलती है। जैन मन्दिरोंमें जो मोक्षप्राप्त तीर्थंकर महात्माओंकी मूर्तियाँ विराजमान करनेका रिवाज है, वह बहुत उत्तम है। इन ध्यानाकार शांत मूर्तियोंके दर्शनसे हमारे भावोंमें बड़ी शान्ति आती है। इसलिए बालक बालिकाओंको ऐसी ध्यानाकार मूर्तिके सामने भक्तिमय स्तुति पढ़नेको कहना चाहिए। बालकोंको कुछ भक्तिमय कविताएँ कंठ करा देना चाहिए जिन्हें वे मंदिरोंमें मूर्त्तिके सम्मुख या मूर्त्तिका निमित्त न होनेपर वैसे ही मनमें ईश्वर या उसकी मूर्त्तिका ध्यान करके पढ़ लिया करें। नमूनेके तौरपर ऐसे कुछ दोहे नीचे लिखे जाते हैं:—

परमातम परमेशको, बंदूँ मन-वच-काय।
शांत भाव पाऊँ विमल, क्रोधाधिक विलगाय॥
सर्व ज्ञानधारी प्रभू, सर्वविकारविहीन।
ध्याउँ तुम्हरे गुण विमल, नाहिं रहूँ मैं दीन॥
वीतराग अरु दोषबिन, समता-सागर-धार।
रमता जो तुझ गुण विषैं, होता भवदधिजिन पार॥
मैं बालक अज्ञान हूँ, दर्शन कर कर देव।
मैल सकल मनका हटा, सुख उपजा स्वयमेव॥
पाप ताप खोया सभी, पुण्य उपाया सार।
परमातमकी भक्तिसे, हो जाऊँ अविकार॥

२ **नीतिविषयक कथाएँ।** बालक बालिकाओंके लिए कुछ कथाएँ ऐसी बना देनी चाहिए जिनको पढ़कर उनके मनमें क्रोध, मान, माया

और लोभसे घृणा पैदा हो जाय और शान्ति तथा समताके भाव उत्पन्न हों। नमूनेके तौरपर एक कथा आगे दी जाती है—

अतिलोभका परिणाम।

लंकामें रावण नामका एक बड़ा प्रतापशाली राजा था। वह गृहस्थ था। उसके मन्दोदरी नामक पटरानी थी। वह बहुत सुन्दरी तथा गुणवती थी। एक वार श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और स्त्री सीता सहित दंडक वनमें आए। ये अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र थे। बड़े यशस्वी और पुण्यवान् थे। सीता भी बड़ी लज्जाशीला, पतिव्रता तथा धर्मप्राणा थी। इनके वन आनेका कारण यह हुआ कि राजा दशरथको अपना राज्य किसी कारणवश अपने बड़े पुत्र रामचन्द्रको छोड़कर भरतको देना पड़ा। भरतके राज्यमें कोई विघ्न न आवे यह सोचकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई अयोध्या छोड़कर वनमें चले आए। दंडक वनमें रहते समय एक बार एक शत्रु सेना लेकर लड़नेको आया, उससे लड़नेके लिए श्रीराम और लक्ष्मण चले गए। सीता अकेली वनमें थीं। इसी समय रावण उस वनमें आ निकला। सीताके मनोहर रूपको देखकर उसके चित्तमें अति लोभ पैदा हुआ। उसने कामभावसे अंध होकर सीताको उठाकर अपने विमानमें बिठा लिया। फिर विमानको आकाशमार्गसे उड़ाता हुआ शीघ्र लंकामें जा पहुँचा। सीताजी बड़ी पतिव्रता तथा शीलवती थीं। उनके मनमें श्रीरामचन्द्रजीके सिवा किसी दूसरेका विचार स्वप्नमें भी नहीं आ सकता था। रावणने सीताको बहुत समझाया—बहुत प्रलोभन दिये, परन्तु सीताने उनकी कुछ परवा न की, बल्कि उन्होंने उसे हरतरहसे समझाया। कहा—"गृहस्थको अधिक लोभ न करना चाहिए। उसे अपनी विवाहिता स्त्रीमें ही संतोष रखना उचित है।" परन्तु रावणने सीताकी नीतियुक्त बातोंपर कुछ ध्यान नहीं

दिया । रावणका प्रण था कि जो स्त्री मुझे न चाहेगी, उसपर मैं कभी बलात्कार न करूँगा । रावणके इस नियमके कारण सीताजीको अपने शीलकी रक्षा करनेमें बहुत सुविधा हुई । श्रीरामचन्द्रजीको हनुमानजीकी सहायतासे सीताका पता मिला । सीताजीका पता पाकर राम एक बहुत बड़ी सेना लेकर लंकापर चढ़ आए और रावणसे युद्ध करने लगे । अंतमें अन्यायी और अतिलोभी रावण युद्धमें मारा गया और क्रोध भावसे मरकर दुर्गतिको प्राप्त हुआ । पतिव्रता सीताजी फिर रामसे आ मिलीं । देखो, अति-लोभका फल यह होता है कि रावणका राज्य गया, दुर्गति हुई और अंतको प्राण भी खोने पड़े । इससे कभी अधिक लोभ नहीं करना चाहिए । अपनी ही वस्तुमें संतोष रखना चाहिए । संतोषी मनुष्य सदा सुखी रहता है ।

(३) **मंत्रादिका जपना ।** बालक बालिकाओंको कुछ मंत्र बतला देना चाहिए जिनको वे किसी नियत समयपर माला लेकर जपा करें । उनको आसनसे बैठना भी सिखा देना चाहिए । प्रातः और सायंका-लका समय मंत्र जपनेके लिए अच्छा है । १०८ गुरियोंकी माला लेकर मंत्र जपना चाहिए । उनको समझा देना चाहिए कि मंत्रमें परमात्माका नाम है ।

मंत्र—(१) ॐ (२) सोहम् (३) अरहंत (४) सिद्ध (५) अरहंतसिद्ध (६) असिआउसा (७) आत्माराम (८) परमात्मा इत्यादि ।

४ भजन सीखना । बालक बालिकाओंको कुछ भजन सिखा देना चाहिए, जिनको वे समय समयपर जाकर परमात्माके गुण स्मरण किया करें । यथा—

परम आतम मेरा आतम, मुझे उसका भजन करना।
वही सब दोषसे सूना, उसीका ध्यान नित करना॥
वही सर्वज्ञ सबदर्शी, न है चिंता वहाँ कोई।
वही है शांतमय अनुपम, उसीका ही रटन करना॥ १॥ पर०॥
नहीं है क्रोध अर मानं, न माया लोभ है उसमें।
नहीं है कामना उसमें, उसीमें ही मगन रहना॥ २॥ पर०॥
नहीं है वर्ण कुछ उसका, न कोई गंध है उसमें।
न रस है शुद्ध आतममें, उसीसे प्रेम नित करना॥ ३॥ पर०॥
सुमंदिर देह यह अपना, उसीमें देव सम आतम।
उसीको मान 'सुखसागर,' उसीमें डूबते रहना॥ ४॥ पर०॥

इस प्रकार उपरि लिखित चार बातोंका अभ्यास बालक बालिकाओंको बचपनसे करना चाहिए। इन विषयोंमें ज्यों ज्यों उनका अभ्यास बढ़ता जायगा, त्यों त्यों वे इस विषयमें आगे बढ़ते जाँयगे और उनका तद्विषयक ज्ञान अधिकाधिक बढ़ता जायगा।

---

१० शिक्षाकी शोचनीय दशा।

शिक्षा प्राप्त करना—पढ़ना लिखना सीखना प्रत्येक बालक बालिकाका परम पवित्र कर्तव्य है। क्यों कि शिक्षाके अभावमें मनुष्य मनुष्य नहीं बन सकता है। अत एव प्रत्येक बालक-बालिकाको पढ़ना-लिखना सीखना—शिक्षित होना बहुत आवश्यक है। प्राचीन भारतमें सब स्त्री पुरुष पढ़े लिखे थे, क्वचित् ही कोई अपढ़ मनुष्य मिलता था। शिक्षाके प्रभावसे उस समय भारत सब प्रकारसे सुखी और समुन्नत था। आजकल अनेक देशोंमें बलात् शिक्षणका नियम प्रचलित है।

उन देशोंमें पढ़ने योग्य उम्रके सब बालक बालिकाओंको पढ़नेके लिए पाठशालाओंमें जाना पड़ता है। उनके लिए पढ़ना लिखना अनिवार्य्य है। जो माता पिता या वारिस अपने बच्चोंको योग्य उम्र होनेपर पाठ-शालामें नहीं भेजते हैं, उन्हें दंड दिया जाता है। भारतवर्षकी मनुष्य-गणनाकी रिपोर्ट देखनेसे ज्ञात होता है कि भारतमें शिक्षाका प्रचार बहुत ही कम है। नीचे दिए हुए कोष्ठकसे उसका स्पष्टीकरण होगा। पाठकगण, शिक्षाकी इस दुर्दशाको देख कर जान सकेंगे कि भारतमें कैसा घोर अज्ञानान्धकार फैला हुआ है। शिक्षाके अभावसे भारतीय मनुष्य मनुष्यत्त्वसे हीन हो रहे हैं। ऐसी परिस्थितिमें उनका सुधार कैसे होगा, यह एक बड़ा गंभीर प्रश्न है।

सन् १९२१ में भारतीयोंकी शिक्षाकी दशा।

(प्रति हज़ार पीछे)

नाम प्रांत	पढ़े हुए पुरुष	पढ़ी हुई स्त्रियाँ
१ ब्रह्मदेश या बरमा	५१०	११२
२ ट्रावनकोर राज्य	३८०	१७३
३ कोचीन राज्य	३१७	११५
४ बड़ौदा राज्य	२४०	४७
५ बंगाल प्रान्त	१८१	२१
६ मद्रास प्रान्त	१७३	२४
७ बम्बई प्रान्त	१५७	२७
८ मैसूर राज्य	१४३	२२
९ आसाम प्रान्त	१२४	१४
१० बिहार उड़ीसा प्रान्त	९६	६

		पढ़े हुए पुरुष	पढ़ी हुई स्त्रियाँ
११	मध्यप्रान्त और बरार	८७	९
१२	पंजाब और दिल्ली	७६	९
१३	राजपूताना अजमेर	७४	६
१४	युक्तप्रान्त	७३	७
१५	मध्यभारत ग्वालियर	६५	७
१६	हैदराबाद दक्षिण	५७	८
१७	काश्मीर राज्य	४६	३

सबसे पहले इस बातकी जरूरत है कि इस घोर अशिक्षाका मुँह काला किया जाय। यदि देशी राज्य और भारत सरकार दोनों अनिवार्य्य शिक्षाका कानून जारी कर दें, तो देशके सब लोग शीघ्र शिक्षित हो जायँ। परंतु राज्यपद्धतिकी जैसी दशा देखने में आती है उससे पता चलता है कि ऐसी सार्वजनिक विस्तृत शिक्षाका प्रबन्ध निकट भविष्यमें सरकारद्वारा होना कठिन है। ऐसी दशामें हम सब भारतीयोंको उचित है कि हम स्वतः अपने पैरोंपर खड़े हों और अपने देशके प्रत्येक बच्चेको शिक्षा देनेका प्रबंध स्वयं कर लें। शिक्षाप्रचारके लिए दो बातोंकी आवश्यकता है। एक पैसा, दूसरे शिक्षित भाई—बहनोंकी सेवा। यदि इन दोनोंका योग मिल जाय, तो शिक्षाप्रचारमें अपूर्व प्रगति हो।

भारतीयोंमें ऐसे सामाजिक रीति—रिवाज चल पड़े हैं, जिनके कारण प्रत्येक गृहस्थको बहुत कुछ खर्च करनेकी चिंता रहती है। इस कारण वे सबसे आवश्यक काम शिक्षाके लिए पैसा नहीं निकाल सकते हैं। शिक्षा मनुष्यके लिए बहुत आवश्यक है। जिसके अभावमें मनुष्य मनुष्य नहीं कहलाता है, जिसके बिना स्वप्नमें भी सुखशांति नहीं मिल सकती है; उसके लिए सब अनावश्यक खर्चोंको घटाकर पैसा बचाना

चाहिए और उसे शिक्षाप्रचारके काममें खर्च करना चाहिए। विवाह-शादीमें हजारों रुपया व्यर्थ खर्च न करके सौ या पचास रुपयेमें विवाहकी रस्म अदा करनी चाहिए। मरण होनेपर बिरादरीको भोजन कराना अनुचित तथा अनावश्यक है। जन्मके समय भी व्यर्थ पैसा न लुटाना चाहिए। मंदिरोंकी संख्या अधिक होनेपर बिना विशेष जरूरतके नए मंदिर न बनाए जाने चाहिए। मंदिरोंकी अनावश्यक शोभा बढ़ानेमें भी बहुत द्रव्य खर्च करना उचित नहीं है। रहन-सहन सादा रक्खा जावे। सादा शुद्ध भोजन किया जाय। अनावश्यक मकानोंको बनाकर व उनको सजाकर पैसा न अटकाया जाय। धनवानोंको भी दिखावटी कामोंमें व्यर्थ धन खर्च नहीं करना चाहिए। प्रयोजन यह कि चारों तरफसे किफायत करके पैसा बचाना चाहिए और उसे एक शिक्षाप्रचारके काममें खर्च करना चाहिए। महिलाओंको साधारण आभूषणोंसे ही संतोष मानना चाहिए। प्रत्येक भारतीयको अपने हृदयमें ऐसी भावना दृढ़ कर लेना चाहिए कि जब तक हमारे देशका एक भी लड़का या लड़की अशिक्षित रह जायगी, तब तक हम सुखकी नींद न सोवेंगे। उनको अपने सुदृढ़ उद्योगसे अविद्याकी कीचड़में फँसे हुए मनुष्योंको उठाकर ज्ञानके उच्च आसनपर बिठा देना चाहिए। इस प्रकारके उद्योगसे भारत अवश्य शिक्षित हो जायगा।

हम लोगोंने करोड़ों भाइयोंको अछूत तथा निंद्य कहकर अपनेसे अलग कर रक्खा है। हमारी इस अनुदारता तथा संकुचित वृत्तिके कारण वे बेचारे पशुतुल्य जीवन बिता रहे हैं। शिक्षा एक ऐसी पवित्र वस्तु है कि जो उसे अपनाता है वह माननीय हो जाता है और जो उसका आदर नहीं करता वह नीचे गिर जाता है। हमारा कर्तव्य है कि हम शिक्षाद्वारा अछूतोंको संस्कृत करके उन्हें ऊँचा बनायें। हम शीघ्र ही ऐसा

दिन देखनेकी शुभ आशा करते हैं कि जब समस्त भारतवासी, क्या उच्च क्या नीच, सभी पढ़ लिखकर सुशिक्षित बन जायँगे।

यह बात हम पहले बतला चुके हैं कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो शरीर, वचन, मन तथा आत्मा इन चारोंको उन्नतिकी ओर अग्रसर करे। आजीविकाके लिए इस बातपर ध्यान रखना जरूरी है कि लोगोंको अपने अपने धंदोंमें निपुण बनाया जाय। यथा किसानके लड़कोंको खेती सम्बन्धी शिक्षा, बढ़ईके लड़कोंको लकड़ीके कामकी शिक्षा, लुहारके लड़कोंको लोहेके कामकी शिक्षा और दरजीके लड़कोंको सीनेकी शिक्षा दी जानी चाहिए।

इस तरह प्रत्येक पेशे व धंदेवालोंको अपने अपने पुरुषाओंके काममें दक्षता प्राप्त करनी चाहिए। इसीमें उनको सिद्धि प्राप्त होगी और वे अपना तथा देशका कल्याण कर सकेंगे। ऐसी शिक्षा हानिकारक सिद्ध होगी जिससे एक मनुष्य पढ़ना लिखना तो सीख ले, परंतु कोई हुनर या उद्योग न सीखकर अपने परम्परासे चले आए हुए खानदानी रोज-गारको छोड़ बैठे और नौकरी पानेके लिए अर्जी लिए हुए द्वार-द्वारपर भटकता फिरे। ऐसी शिक्षा कल्याणकारी होनेके बदले उल्टी जीवनको संकटमें डालनेवाली होगी। भारतकी उन्नति तब होगी, जब किसान लोग पढ़-लिखकर वैज्ञानिक ढंगसे खेती करेंगे, पढ़े लिखे मजदूर इंजीनियरीके नियमोंसे सुपरिचित होकर मकान बनाएँगे, पढ़े लिखे दर्जी सीनेके काममें तरक्की करेंगे। इसके लिए भिन्न भिन्न प्रकारके उद्योग सिखाने-वाले स्कूल खोले जाने चाहिए जिसमें विद्यार्थियोंकी योग्यता और रुचिके अनुसार उनको उद्योग सिखलाया जाय। हाथके उद्योगोंका प्रचार करना मानो मानव-समाजकी बेकारीको दूर करना है। जिस देशमें बहुतसा

काम मशीन और कल पुरजोंसे लिया जाता है, उस देशमें मनुष्योंकी बेकारी बढ़ जाती है। क्यों कि उनके लिए काम नहीं बचता है। एक मशीन सैकड़ों मनुष्योंका काम कर डालती है। इसी लिए महात्मा गाँधी विदेशी और मिलके कपड़ोंको छोड़कर हाथकी कती-बुनी खादी पहिरनेकी सलाह देते हैं। अपने देशकी शुद्ध खादी पहिरना अपने लाखों बेकार भाईयोंको अन्न-वस्त्र देना है।

शिक्षाके लिए धनशालियोंको खूब धन देना चाहिए। जो अपनेको राजा, महाराजा, सेठ-साहूकार या जमींदार मानते हैं उनको अपनी अधिक आमदनी शिक्षाप्रचारके कार्यमें खर्च करना चाहिए। शिक्षा-प्रचारके लिए उन पढ़े-लिखे भाईयोंको अपना शेष जीवन अर्पण करना चाहिए जो किसी समय सरकारी नौकर थे और अब पेन्शन पाते हैं। जिनके पुत्र-पौत्र मौजूद हैं, वे भी अपने घरका प्रबंध उनको सौंपकर शिक्षाके काममें अग्रसर हो सकते हैं। इस देशमें ऐसे अनुभवी विद्वान् लाखोंकी तादादमें आज भी मौजूद हैं, जो अपने जीवनके अंतिम दिवस आलस्य, प्रमाद, चौपड़, सतरंज, ताश, परनिंदा या चापलूसीमें बिताते हैं और अपने अवकाशके समयको शिक्षाप्रचार जैसे पवित्र कार्यमें नहीं लगाते हैं। यदि देशका शिक्षितवर्ग शिक्षासम्बन्धी प्रबंध करनेके लिए बद्धपरिकर हो जाय और धनवान् शिक्षाप्रचारके लिए अपनी अपनी थैलियोंका मुँह खोल दें, तो शिक्षाके सर्वत्र प्रचारमें जरा भी विलम्ब न हो। दस ही वर्षमें एक भी लड़का और लड़की अपढ़ न मिले। योग्य शिक्षाके प्रभावसे मदिरा-मांस खानेकी टेव मिटेगी, गन्दगी हटेगी, सफाईसे रहनेकी आदत पड़ेगी, चोरी, झूठ आदिसे घृणा पैदा होगी, बेकारी दूर हो जायगी, सब लोग अपना कर्तव्य समझकर सबके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करेंगे, फूट और वैमनस्यकी जड़ उखड़ जायगी, परो-

पकार-देशोपकार करनेकी वृत्ति उमगेगी और आत्मोन्नतिका द्वार खुल जायगा। मनुष्योंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों प्रकारके पुरुषार्थोंकी सिद्धिमें शिक्षा ही मुख्य कारणभूत है। शिक्षाके द्वारा ही इनका साधन सुगम तथा संभव हो सकता है। इस लिए देशके बच्चे बच्चेको शिक्षित बनाना प्रत्येक मानवका परम कर्तव्य है। विद्यादानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि जो कर राजा प्रजासे वसूल करता है, उसका अधिक भाग शिक्षाप्रचारहीमें खर्च होना चाहिए। दूसरे सभी देशोंमें ऐसा ही होता है; परन्तु भारतवर्षमें विदेशियोंकी राजसत्ता होनेसे वे जितना कर वसूल करते हैं, लगभग उसका आधा रुपया सेना और पुलिस विभागमें खर्च कर डालते हैं, शिक्षाके कार्यमें बहुत कम खर्च करते हैं। उन्होंने प्रजाको शस्त्रहीन कर दिया है, इस कारण प्रजा अपना बचाव किसी शत्रु चोर या डाँकूसे स्वयं नहीं कर सकती है। यदि देशमें कोई प्रबल शत्रु आ जाय, तो सिपाहीका काम कोई नहीं दे सकता है। विदेशी शासकोंको अपनी प्रजापर विश्वास नहीं है, इसलिए वह उसे शस्त्रविद्या नहीं सिखाती है। यदि प्रजाको शस्त्रविद्या सिखाई जावे, तो अवसर पड़नेपर प्रजासे बहुतसे सिपाही मिल सकें और वेतनभोगी सिपाही कम रखना पड़ें। इस प्रकार बहुतसा पैसा बच जाय और उससे शिक्षाप्रचारका काम बहुत अच्छी तरह चलने लगे।

इस अभागे देशमें जब सेनाविभागमें देशके कुल करका ४२ प्रतिशत खर्च किया जाता है, तब खास इंग्लेण्डमें केवल १५ प्रतिशत, और फ्रान्समें १० प्रतिशत खर्च किया जाता है। इस देशमें अँग्रेजी सेना रखकर भारतीय सेनाकी अपेक्षा चौगुनेसे अधिक खर्च किया

जाता है। जब चार हज़ार अंग्रेज घुड़सवारोंकी सेनामें पन्द्रह लाख रुपया खर्च होता है, तब १५ हजार भारतीय घुड़सवार सेनामें केवल आठ लाख रुपया खर्च होता है। चालीस हज़ार अँग्रेज पैदल सेनामें जब १६ लाख रुपया खर्च किया जाता है, तब ९७ हज़ार भारतीय पैदल सेनामें ६ लाखसे अधिक खर्च नहीं होता है। वर्तमान भारतीय राज्यपद्धतिके आमूल परिवर्तनके बिना भारतीयोंकी राजकीय दशा कभी सुधर नहीं सकती है। इसलिए हमें अपने पैरोंपर खड़े होकर समग्र देशको शिक्षासे विभूषित कर देना चाहिए। कमसे कम १५–१६ वर्षकी उम्र तक लड़कियोंको और २० वर्षकी उम्र तक लड़कोंको शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। विद्यार्थियोंको कमसे कम शिक्षा प्राप्त करनक समय तक शादीके झगड़ेमें नहीं पड़ना चाहिए। इसके आगे भी यदि इच्छा हो, तो उन्हें और अधिक शिक्षा प्राप्त करने देना चाहिए। शिक्षा समाप्त कर चुकनेपर जब युवक आजीविका प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाय, तभी उसे अपना विवाह करना उचित है। कन्याको भी देखना चाहिए। यदि वह उच्च शिक्षा पाना चाहती हो, तो उसको भी बिना विवाह किए, ब्रह्मचर्य पालन करते हुए विद्या प्राप्त करना चाहिए। विद्या और विवाहका बैर है; परन्तु ब्रह्मचर्य ज्ञानका साधक है। इसलिए शिक्षा प्राप्त करते समय पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए।

---

११ परमोत्तम ध्येय और उसका साधन।

अच्छी तरह शिक्षा प्राप्त कर चुकनेके पश्चात् प्रत्येक मनुष्य चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, इस योग्य हो जाता है कि वह इस संसारमें कुछ कार्य्य करे। सिपाही जब युद्धकला सीख चुकता है, तभी लड़नेके लिए युद्धक्षेत्रमें भेजा जाता है।

इस संसार-क्षेत्रमें मनुष्योंका परमोत्तम ध्येय, आत्मोन्नति और परोपकार करना है। आत्माका सच्चा स्वरूप जैसा हम पहले बतला चुके हैं पूर्ण-ज्ञानमय, आनन्द-स्वरूप, परम शान्त तथा अमूर्त्तिक है। आत्मा स्वयं परमात्मा है। परन्तु उसके ऊपर पाप-पुण्यका—कर्मोंका पर्दा पड़ा हुआ है, इस कारण वह संसारमें अज्ञानी और कषायवान् अर्थात् क्रोधी मानी आदि हो रहा है। यदि यह पर्दा हट जाय, तो सदाके लिए शुद्ध हो जाय, अर्थात् जैसा इसका असली स्वभाव है वैसा स्वभाव प्रकाशमान हो जाय।

आत्मोन्नति करनेका उपाय आत्मध्यान है। आत्मध्यान तब किया जा सकता है, जब मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता न हो और रात दिन आत्म-प्रेममें मन सदा निमग्न रहे। इसके लिए अपने मनको सब सांसारिक विषयोंसे हटाकर निवृत्तिमार्ग या त्यागकी ओर लगाना चाहिए। विवाहकी उपाधि लगते ही एक गृहस्थको अनेक घोर चिन्ताएँ आ घेरती हैं। उसको स्त्रीपुत्रादिकी फिकर लग जाती है। इस लिए जिस स्त्री-पुरुषको आत्मोन्नतिका भले प्रकार अभ्यास करना हो, जिसे परमोत्तम ध्येय साधन करना हो, उसे आजीवन अविवाहित रहकर त्यागमय जीवन व्यतीत करना चाहिए। परन्तु जो मनुष्य इस पथके पथिक बनना चाहें, उनको यह भली भाँति देख लेना चाहिए कि वे अपनी पाँचों इन्द्रियोंपर काबू

रखते हैं या नहीं, तथा कषायें मन्द हैं या नहीं । जिनके वशमें पाँचों इन्द्रियाँ न हों, जो शीघ्र क्रोधादि कषायोंके अधीन हो जाते हों, उनको त्यागमार्गका विचार त्याग देना चाहिए। जो इन्द्रियोंको जीत लेता है, वही त्यागी हो सकता है। उसे अपनी जीभ इस तरह वशमें करना चाहिए कि उसे छह रसोंके खानेकी कभी लालसा न हो, वह केवल रूखा—सूखा भोजन शरीररक्षाके निमित्त करे। उसे अपने नेत्रोंसे कभी किसी स्त्रीको रागसे न देखना चाहिए और न उसे बाग-बगीचा, नगर और दुनियाके तमाशे देखनेका शौक होना चाहिए। वह अपनी स्पर्श इन्द्रियको ऐसी विजयी बना ले कि उसके हृदयमें कभी किसी प्रकारका कामभाव उत्पन्न न हो, वह सदा ब्रह्मचारी रहे। कर्ण इन्द्रियको नाना-प्रकारकी राग-रागिनियाँ सुननेका शौक न हो। वह सदा सादा शुद्ध भोजन करे, जितेन्द्रिय हो, कषायकी प्रबलता न होने दे, जरा जरासी बातपर क्रोध न करे, अपने गुणोंका अभिमान न करे, लोभ—लालचको कभी पास न फटकने दे, यथा लाभ संतोष धारण करे। ऐसे पुरुष ही निवृत्ति मार्गके अधिकारी कहे जा सकते हैं।

आत्मध्यानके साथ परोपकारका बड़ा सम्बन्ध है। जब तक मनुष्य बहुत उच्चपदपर न पहुँचे, आत्मध्यानका पूरा अभ्यासी न हो जाय, तब तक आत्मध्यान अधिक काल तक नहीं कर सकता है; बीच बीचमें बहुत समय बच रहता है। उस समयको अन्य किसी उपयोगी काममें लगाना उचित है, जिसको एक शब्दमें हम 'परोपकार' कह सकते हैं। दूसरोंका हित करना, दूसरोंके दुखदर्दमें सहायक होना ही परोपकार कहलाता है। परोपकारमें स्वार्थकी भावनाका बिलकुल अभाव होता है। जो मनुष्य किसी फलकी आशासे कोई काम करता है, वह परोपकार नहीं कहा जा सकता है। धर्मोपदेश देना, सदाचारका मार्ग बतलाना, रोगि-

योंका रोग निवारण करना, अनाथोंकी रक्षा करना, अविद्याके संहारके लिए ज्ञान प्रचार करना, सामाजिक कुरीतियोंको हटाना, देशकी अधोगतिको दूर करना आदि काम परोपकारमें गिने जा सकते हैं। त्यागियोंको अपनी इच्छानुसार इन परोपकारी कामोंमेंसे किसी कार्यमें अपने अवकाशके समयको लगाना चाहिए।

जैनसिद्धान्तानुसार त्यागियोंकी श्रेणियाँ इस प्रकार हैं:—

(१) **सप्तम प्रतिमाधारी श्रावक।** जो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य पालनकर सदा ब्रह्मचारी रहे, तीनों काल—प्रातः, मध्याह्न और संध्या समय—ध्यान करे और दिनमें एक या दो बार शुद्ध भोजन करे। ये लोग सवारीपर चढ़ सकते हैं और भोजनादिका प्रबन्ध कर सकते हैं। इनको महीनेमें चार उपवास करना पड़ते हैं।

(२) **आरंभत्यागी श्रावक** (आठवीं प्रतिमा या श्रेणीका धारक)। ये ब्रह्मचारी रहते हुए सवारीपर नहीं चढ़ सकते हैं, पैदल विचरण करते हैं और अपने हाथसे भोजन-पानका प्रबंध नहीं करते हैं। जो दूसरेने भक्तिपूर्वक दे दिया उसीको संतोषपूर्वक ग्रहण करते हैं। दिनमें तीन वार ध्यान करते हैं। शेष क्रियाएँ सप्तम श्रेणीके समान पालते हैं।

(३) **परिग्रहत्यागी** या नवम प्रतिमा या श्रेणीका धारक। ये ब्रह्मचारी रहते हुए अपने पास रुपया पैसा नहीं रखते हैं, केवल व्यवहारके लिए दो तीन वर्तन और कुछ आवश्यक कपड़े रखते हैं। शेष आचरण अष्टम श्रेणीके समान पालते हैं।

(४) **अनुमतित्यागी** या दशम प्रतिमाधारी श्रावक। इसमें अन्य-श्रेणियोंसे यह विशेषता होती है कि ये सांसारिक व्यवहारमें अपनी सम्मति नहीं देते हैं।

(५) **उद्दिष्टत्यागी** ग्यारहवीं श्रेणीके श्रावक या क्षुल्लक। इनमें दशम श्रेणीके त्यागियोंसे यह विशेषता होती है कि वे श्रावकोंके अपने कुटुम्बके हेतु बनाये हुए भोजनमेंसे एक बार भोजन ले लेते हैं। जो भोजन उनके उद्देश्यसे बनाया जाय, उसे वे ग्रहण नहीं करते। जो भोजन उनके उद्देश्यसे बनाया गया हो, उसे उद्दिष्टाहार कहते हैं। उसके वे त्यागी होते हैं। ये निमंत्रण नहीं मानते हैं, स्वयं भिक्षार्थ भ्रमण करते हैं। जीवदयाके हेतु मोरके पंखोंकी एक मोरछल लिये रहते हैं। एक लंगोट और एक शरीर ढँकने योग्य खंडवस्त्र भी रखते हैं। भोजनके लिए एक पात्र भी रख सकते हैं। ये श्रावक एक घरमें भी भोजन कर सकते हैं और अनेक घरोंसे थोड़ा थोड़ा भोजन अपने पात्रमें एकत्रकर पूरा हो जानेपर अन्तके घर बैठकर खा लेते हैं।

(६) **ऐलक** ग्यारहवीं श्रेणीका उच्चतम पद। इनमें क्षुल्लकोंसे यह विशेषता होती है कि ये एकमात्र लंगोटी रखते हैं और केश बढ़ जानेपर उन्हें स्वयं नोच डालते हैं। ये लोग शारीरिक ममत्वके बड़े त्यागी और ध्यान रखनेके बड़े अभ्यासी होते हैं। ये काठका कमण्डलु रखते हैं। स्त्रियाँ इस दरजेमें आर्यिका कहलाती हैं। वे एक साड़ी मात्र रखती हैं। ऐलक और आर्यिका दोनों ही बर्तनमें नहीं खाते, अपने हाथपर रखकर भोजन करते हैं।

(७) **निर्ग्रंथ साधु**। यह श्रेणी साधु मुनि या विरक्तोंकी है। यहाँ परमहंस दशा आ जाती है। ये लोग लंगोट त्याग देते हैं। इनको एक मासमें ४ उपवास करनेका नियम नहीं होता है, कभी कभी चारसे अधिक हो जाया करते हैं और कभी बिलकुल नहीं होते। ये बहुत अल्पाहारी होते हैं। इन सात श्रेणियोंमें जो जिस श्रेणीके लायक

अपनेको समझे, उसे उसी श्रेणीमें रहकर आत्मोन्नति और ध्यानका अभ्यास करना चाहिए। शेष अवकाशके समयको उन्हें परोपकार-साधनमें लगाना चाहिए।

शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् मानवोंको आत्मोन्नतिके हेतु इन पदोंको गृहण करके अपना जीवन सफल करना चाहिए। जैनियोंमें अनेक साधुओंने बालब्रह्मचारी बनकर परमार्थका साधन किया है। यथा—

(१) **भद्रबाहु श्रुतकेवली।** ये बड़े ज्ञानी तथा तपस्वी थे। महाराज चन्द्रगुप्त सम्राट्के दीक्षागुरु थे। जन्मके ये बंगाली ब्राह्मण थे। विद्या पढ़नेके पश्चात् अविवाहित रहकर इन्होंने अपना जीवन आत्मोन्नति तथा परमार्थके लिए उत्सर्ग कर दिया था।

(२) **अकलंक स्वामी।** आप बड़े भारी नैय्यायिक और योगी थे। दक्षिणके रहनेवाले 'लघु हव्व' नामक राजाके पुत्र थे। विद्या पढ़नेके बाद आपने भी ब्रह्मचर्य्य धारण करके अपना समस्त जीवन परोपकार तथा आत्मसाक्षात्कार करनेमें लगाया था।

(३) **शुभचन्द्र।** ये राजपुत्र थे। विद्या पढ़कर साधु हो गए थे। ये धुरंधर योगी थे। आपका जन्म मालवा प्रान्तमें हुआ था। आपने अपने जीवनमें अपना तथा लोगोंका बहुत कल्याण किया था।

(४) **ब्राह्मी और सुन्दरी।** ये भगवान् ऋषभदेवकी पुत्रियाँ थीं इन्होंने विद्या पढ़कर ब्रह्मचर्य पालन करते हुए अपनी आत्मा तथा दूसरोंका कल्याण किया।

(५) **चंदना सती।** राजकन्या थी। इसने विद्या पढ़कर आजीवन ब्रह्मचर्य्यपूर्वक रहकर स्व-परहित साधन किया।

ये श्रेणियाँ नियमानुसार संयम पालन करनेके लिए हैं। परंतु ऐसे मनुष्य भी हैं जो नियमानुसार किसी श्रेणीका व्रत नहीं पालते हैं, परंतु साधारणतः संयममें रहकर आत्मध्यान करते हैं। ये लोग भी स्वपरहित साधन कर सकते हैं। वास्तवमें जो लोग आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत पालन करते हैं, वे परम माननीय, पथप्रदर्शक, महावीर और जगतके आदर्श पुरुष हैं। वे लोग जगहितसाधनरूपी यज्ञमें अपना शरीर होम देते हैं। ऐसे महात्माओंद्वारा ही देश तथा समाजका सच्चा कल्याण हो सकता है।

मानव-जीवनका सर्वोच्च ध्येय आत्मोन्नति द्वारा आत्मानंद प्राप्त करना और जगतकी सेवा करना है। यह परमोच्च मानव धर्म है। प्रत्येक जाति और देशमें ऐसे त्यागी स्त्री पुरुषोंकी बड़ी आवश्यकता है। ये वास्तवमें वे दीपक हैं, जिनके बतलाए हुए प्रकाशसे गृहस्थ लोग अपना जीवन सफल बना सकते हैं; संसाररूपी वीहड़ जंगलके अगम मार्गसे निकलकर सुमार्गपर लग जाते हैं। संसारका सच्चा हित निस्पृह साधुओंकी कृपाके विना नहीं हो सकता है। वे ही संसारके सूर्य और चन्द्र हैं जो बिना किसी स्वार्थके जगतका उपकार करते हैं। किसी कविने सच कहा है:—

स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः
पिबन्ति नाम्भः स्वयमेव नद्यः।
धाराधरो वर्षति नात्महेतोः
परोपकाराय सतां विभूतयः॥

१२-तीन पुरुषार्थ।

शिक्षा समाप्त कर चुकनेपर प्रत्येक मनुष्यको यह निश्चय करना चाहिए कि उसे संसारमें त्यागी बनकर विरक्त भावसे जीवन व्यतीत करना है या गृहस्थ बनकर रहना है। यदि उसमें त्यागी होनेकी इच्छा और योग्यता हो, तो उसे इसके पहले अध्यायमें बतलाए हुए क्रम और नियमोंके अनुसार साधना करना चाहिए। यदि गृहस्थजीवन बिताना हो, तो उसे धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थका साधन करना चाहिए।

पुरुषार्थ वास्तवमें आत्माकी उस शक्तिसे काम लेनेको कहते हैं, जो कर्मोंके असरके हटनेसे स्वयं प्रकाशमान हो रही है। कर्मोंका—पाप या पुण्यका—जो फल हो रहा है, उसको दैव या भाग्य कहते हैं; परन्तु जितना ज्ञान-दर्शनगुण ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मोंका जोर हटनेसे प्रकट है, वह आत्माका ज्ञान-दर्शन या देखने या जाननेका गुण है तथा आत्मामें जो वीर्य है, उसे अन्तरायकर्म ढके हुए है। जितना अंतराय कर्मोंका ज़ोर दबता है उतना आत्म-बल (Soul force) प्रकट होता है। इसके सिवा मोहकर्मने भी आत्माके सम्यक्त्व या सच्चे श्रद्धान गुणको तथा चरित्र या वीतरागमय गुणको ढँक रक्खा है। जितना जितना मोहका दबना होता है, उतना उतना श्रद्धा भाव और वीतरागभाव प्रकट होता है। इस लिए यह बात समझनी चाहिए कि जितना, दर्शन, वीर्य, श्रद्धान या शान्त भाव आत्मामें प्रकाशमान है, वह सब पुरुषार्थ या पुरुषार्थका साधन है। अर्थात् प्रत्येक मनुष्यको अपनी इन शक्तियों-द्वारा विचार करके श्रद्धा तथा बलपूर्वक शान्त भावसे धर्म, अर्थ और

काम पुरुषार्थका साधन करना चाहिए। जितना अज्ञान है और जितना बल प्रकट नहीं है तथा जितना मोहका जोर है, उसको दैव कहते हैं, तथा जितना असाताकारक पाप कर्मोंका जोर है उसको व जितना साताकारक पुण्यकर्मोंका जोर है, उसको भी दैव कहते हैं। पुरुषार्थ करते समय जब शुभका रूप दैव सहायक होता है तब कार्य सफल हो जाता है, और जब पापकर्मरूप दैवका उदय होता है, तब कार्य असफल होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोहादिका जितना ज़ोर होता है, शुद्ध विचार करना उतना ही दुस्तर हो जाता है। जब पुरुषार्थ बलवान् होता है, तब वह बाधक दैवको अपने वशमें कर लेता है, और जब निर्बल होता है तब स्वयं हार जाता है। कहनेका मतलब यह है कि जब दैव तीव्र नहीं होता, तब पुरुषार्थ, दैव या भाग्यके विरुद्ध भी काम कर जाता है। जैसे जब नदीका प्रवाह बहुत जोरदार होता है, तब तैरनेवाला उसके प्रवाहके विरुद्ध नहीं तैर सकता है और यदि वह साहस करके तैरता भी है तो उसके प्रबल प्रवाहमें पड़कर बह जाता है और उसका पुरुषार्थ कुछ नहीं चलता है; परन्तु जब नदीका प्रवाह मन्द होता है, तब तैराक अपने पुरुषार्थसे प्रवाहके विरुद्ध तैरकर नदीके उस पार हो जाता है। दैव तीव्र है या मन्द, इस बातको हम पहलेसे नहीं जान सकते हैं। जब पुरुषार्थ सफल हो जाता है, तब कहा जा सकता है कि दैव प्रतिकूल नहीं था, बल्कि सहायक था; किन्तु जब वह असफल हो जाता है तब कहते हैं कि दैव प्रबल था, इससे कार्य सिद्ध नहीं हुआ। ऐसी दशामें मनुष्योंको उचित है कि वे सदा पुरुषार्थी रहें और अपने ज्ञानबल तथा आत्मबलसे धैर्य्यपूर्वक प्रत्येक कार्यको करते चले जावें। दैवकी प्रतिकूलताको मिटानेका साधन यह है कि हम नित्य धर्माचरण किया करें, अर्थात् आत्मचिन्तन, परमात्माकी भक्ति, दान, परोपकार

आदि किया करें। धार्मिक निर्मल भावोंके प्रभावसे अशुभ कार्योंका असर घट जाता है। इसी लिए सब पुरुषार्थोंमें धर्म पुरुषार्थको पहले बतलाया है। प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन सबसे पहले धर्मपुरुषार्थका साधन करना उचित है। सूर्योदयके पहले उठकर आत्मचिन्तन, परमात्माका ध्यान सामायिक या संध्यावंदन आदि करना चाहिए। फिर दिनमें दूसरे सांसारिक कार्य करते हुए भी अवसर आनेपर दान, परोपकार, सत्संगति आदि करते रहना चाहिए।

अर्थ पुरुषार्थकी साधनाके लिए हमको उपाय करके द्रव्य कमाना चाहिए। काम पुरुषार्थकी साधनाके लिए इन्द्रियोंकी इच्छाको अपने अधीन करके उनको संतोषके साथ तृप्त करना चाहिए। परंतु इन्द्रियोंका भोग ऐसा करना चाहिए जिससे धर्मसाधनमें बाधा न आने पावे और अर्थ पुरुषार्थमें भी रुकावट या विघ्न उपस्थित न हो।

काम पुरुषार्थका मुख्य हेतु यह है कि मनुष्य शरीरको पुष्ट और काम करने योग्य बनाए रक्खे तथा संसार चलानेके लिए वीर पुत्र तथा पुत्रियोंको पैदा करे। धर्म, अर्थ और काम मनुष्यके ये तीन पुरुषार्थ हैं। इनकी साधना करते समय एक दूसरेको हानि न पहुँचाना मनुष्यका कर्तव्य है। अर्थात् गृहस्थको धर्मका सेवन भी उतना ही करना चाहिए जितने धर्मसेवनसे धन कमाने और उचित भोगोंके भोगनेमें बाधा न पड़े। इसी प्रकार धन कमानेमें भी इतना अधिक न फँस जाना चाहिए कि जिससे धर्मसाधन और उचित भोगोंके भोगनेसे वंचित रहना पड़े। ऐसे ही इन्द्रियोंके भोग भोगनेमें भी इतने अधिक तल्लीन न हो जाना चाहिए कि जिससे धर्म और अर्थके साधनमें व्याघात पहुँचे।

स्त्रियोंके लिए धर्म और काम पुरुषार्थ मुख्य हैं, अर्थ पुरुषार्थ गौण है। तथापि उन्हें अपने अवकाशके समयको शिल्प, हस्तकौशल तथा

अन्य प्रकारकी कलाओंद्वारा अर्थोपार्जनमें लगना उचित है। उनको इन कामोंमें इतना अभ्यास कर रखना चाहिए कि आवश्यकता पड़नेपर वे उनके द्वारा धन कमाकर अपना निर्वाह कर सकें। गृहस्थाश्रममें काम पुरुषार्थका साधन बनाने और परस्पर एक दूसरेके सहायक होनेके लिए विवाह करना आवश्यक है। ऐसा करनस पति-पत्नी दोनों गृहस्थी रूपी गाड़ीको भली भाँति चला सकते हैं। विवाह करनेके पश्चात् गार्हस्थ्य जीवनका प्रारंभ होता है। इस लिए उस समय तक विवाह करना उचित नहीं है जब तक स्त्री-पुरुष दोनों गृहभार संभालनेके योग्य न हो जायँ। गृहस्थी चलाना एक छोटा राज्य चलानेके समान है। पुरुषोंमें जब तक धन कमानेकी योग्यता न आ जाय, तब तक उन्हें विवाहके प्रपंचमें कभी न पड़ना चाहिये। जो धन नहीं कमा सकते हैं, वे गृहभार-वहन करनेके अयोग्य हैं। उनको विवाह करके गृहस्थी बसानेका अधिकार नहीं है, क्यों कि वे अपने स्त्री-पुत्रादिके पालन पोषणकी योग्यता नहीं रखते हैं। इस लिए जब पुरुष शिक्षित हो जाय, तब उसके माता-पिता या रक्षकको उचित है कि उसे किसी धनोपार्जनके कार्यमें लगा दे। उसे भी चाहिए कि वह स्वतः किसी रोजगार-धंदेमें लगकर वर्ष दो वर्ष अभ्यास करके देख ले। जब उसे निश्चय हो जाय कि वह अपने आगामी कुटुम्बके भरण-पोषणके योग्य धनोपार्जन कर सकता है, तभी उसे विवाह करना चाहिए।

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि गृहस्थको अपनी गृहस्थीरूपी गाड़ी सुखपूर्वक चलानेके लिए धनकी आवश्यकता पड़ती है, बिना धनके उसे आकुलतारूपी विषय-भँवरमें पड़कर दुख उठाना पड़ता है। यह सब ठीक है, परन्तु गृहस्थको ऊपर बतलाए तीनों पुरुषार्थ साधन करते हुए मोक्षरूप परम पुरुषार्थकी ओर लक्ष्य रखना उचित है। उसे अपने मनमें ऐसा दृढ निश्चय रखना चाहिए कि मैं कभी न कभी

स्वाधीन होकर परमात्माका अखंड विलास प्राप्त करूँगा। क्यों कि मनुष्य-जीवनका मुख्य उद्देश्य अंतिम लक्ष्य या परम पुरुषार्थ मोक्षप्राप्त करना ही है। इसके लिए उसे अपने मनके भीतर वही भावना सदा जागृत रखनी चाहिए जो भावना एक विरक्त पुरुषके मनमें रहती है। यद्यपि गृहस्थ विरक्त साधकके समान पूर्ण त्याग नहीं कर सकता है, तथापि उसे मोक्षप्राप्तिको मनुष्य-जीवनका मुख्य लक्ष्य मानकर तत्प्रीत्यर्थ त्यागादि धर्मोंका यथाशक्य पालन करते रहना चाहिए। गृहस्थोंको धर्म पुरुषार्थकी ओर विशेष लक्ष्य रखना उचित है। उन्हें यह बात याद रखना चाहिए कि जिस दिन शरीरसे यह आत्मा जुदा होगा, उस दिन इस शरीरका सम्बन्ध जिन जिन चेतन तथा अचेतन पदार्थोंसे है, उन्हें सबको छोड़ देना पड़ेगा। घरद्वार, स्त्री-पुत्र, धनसम्पत्ति आदि सभी संसारी वस्तुओंसे नाता तोड़ना पड़ेगा। यहाँ तक कि अपना शरीर भी यहीं पड़ा रहेगा और आत्मा अपने शुभाशुभ कर्मोंको लिये हुए दूसरे शरीरमें प्रवेश कर जायगा। परलोकमें शुभगति पाना धर्म-साधनपर निर्भर है। धन-सम्पत्ति, स्त्रीपुत्रादि अर्थ और काम पुरुषार्थके फल यहाँके यहीं रह जावेंगे, उनमेंसे एक भी आत्माके साथ न जावेगा। इस लिए बुद्धिमान् पुरुषोंको उचित है कि वे अर्थ और काम पुरुषार्थोंको संतोषके साथ आवश्यकतानुसार उपार्जित करें और धर्म पुरुषार्थका बड़े चावके साथ जितना अधिक उनसे हो सके संग्रह करें। धर्मपुरुषार्थसाधन करनेसे इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखशान्तिकी प्राप्रि होती है। एक नीतिकारने लिखा है:—

> **एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।**
> **शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्र गच्छति॥**

अर्थात् इस संसारी आत्माका एकमात्र मित्र धर्म ही है, जो शरीरके मरनेपर भी उसके साथ जाता है और सब तो इस शरीरके साथ ही नाश हो जाते हैं। इस लिए धर्मपुरुषार्थपर अधिक ध्यान रखना बुद्धिमान मनुष्योंका काम है।

---

१२ अर्थ पुरुषार्थ ।

हर एक पुरुषको उचित है कि द्रव्य कमानेकी ओर समुचित ध्यान देवे। जब वह शिक्षा ग्रहण कर चुके और उसके मनमें यह निश्चय हो जाय कि मुझे अब गृहस्थ-धर्ममें रहना है—त्यागधर्म नहीं धारण करना है तब उसे अपनेको अर्थसाधनके अभ्यासमें लगाना चाहिए। शिक्षा ग्रहण करते समय जिस विषयकी शिक्षा अर्थ-प्राप्तिके हेतु ली हो उसी व्यवसायमें अपनेको लगाना चाहिए। जैन पुराणोंमें आजीविकाके साधनके योग्य छह कर्म बतलाए हैं। असिकर्म (शस्त्र धारणकर क्षत्रिय या सिपाहीका काम करना), मसिकर्म (हिसाब-किताब बही-खाता आदि लिखनेका काम), कृषिकर्म (खेती करनेका काम), वाणिज्य (व्यापार करनेका काम), शिल्प (नाना प्रकारके कारीगरीके काम—जैसे मकान बनाना, पत्थर पीतल आदिकी मूर्तियाँ बनाना, लकड़ीका काम और आभूषण बनाना आदि), विद्या (कला चतुराई जैसे गान-वादन नृत्य आदि)। इन छह प्रकारके कर्मोंमेंसे जो मनुष्य जिस कर्मको उत्तमताके साथ कर सके, उसे उसी काममें लगना चाहिए, उसीमें निपुणता प्राप्त करना चाहिए और उसीके द्वारा द्रव्य कमाना चाहिए। बहुधा उन व्यव-सायोंमें शीघ्र सफलता प्राप्त होती है, जो अपने कुटुम्बमें पहलेसे होते

आए हैं। इस लिए अपने अपने खानदानी पेशोंको करना और उनको तरक्की देना मुनासिब है। द्रव्योपार्जनके लिए कोई भी काम किया जाय, उसमें सत्य, ईमानदारी और सदिच्छाके साथ दूसरोंसे व्यवहार करना चाहिये। जो मनुष्य अन्याय और चोरीके द्वारा धन कमाते हैं, उनको अर्थ पुरुषार्थका साधक नहीं कहा जा सकता है। नीतिपूर्वक तथा सचाईके साथ थोड़ी कमाई करना और सूखी सूखी रोटी खाकर रहना अच्छा, परंतु अनीति और अन्यायसे अधिक धन कमाकर मौज, शौक करना और खर्चीले बनना अच्छा नहीं है। असत्य और अन्याय मानवकी बुद्धिको नीच, पापमय तथा हिंसक बना देते हैं। ऐसे मनुष्य संसारमें चोर डाकू या लुटेरोंसे कम नहीं हैं। धर्मकी रक्षा करते हुए धन कमाना मानव-धर्म है। शरीरके स्वास्थ्यकी ओर ध्यान रखकर अर्थोपार्जन करना चाहिए। यदि शरीरको समयपर भोजन नहीं दिया, आराम नहीं दिया, उसकी सर्दी गर्मीसे रक्षा नहीं की, उसे कार्यके योग्य दृढ़ तथा हृष्ट-पुष्ट नहीं बनाया, तो वह ठीक ठीक काम न कर सकेगा और उल्टा बीमार हो जायगा; तब धर्म, अर्थ, काम सब पुरुषार्थ यों ही रह जावेंगे। इस लिए शुद्ध प्रामाणिक भोजन, व्यायामका अभ्यास और ब्रह्मचर्य्य पालन करते हुए हमें शरीरको सदा सुदृढ़, काममें तत्पर तथा तनदुरुस्त बनाये रखना चाहिए। जो समय शरीरको खिलाने व आराम देनेके लिए नियत हो, उस समय शरीरको भोजन और आराम देना चाहिए। असमयमें खाने पीने और सोनेसे शरीरयंत्र बिगड़ जाता है। अर्थसाधनमें हिंसाका भी ख्याल रखना उचित है। अधिक हिंसाकारी व्यवसायोंकी अपेक्षा कम हिंसाकारी व्यवसायोंको करना चाहिए। खेतीमें हल जोतते समय सामने आए हुए जीवोंको अलग कर देना, उनके प्राण बचा देना यही हिंसाका बचाव है। मांस मदिरादि पदार्थोंका व्यवसाय कभी न करना चाहिए। ये व्यवसाय हिंसा और पापके बढ़ानेवाले हैं।

युद्धमें सिपाहीको उचित है कि घायल, बालक, स्त्री, शरणागत, तथा भागते-हुए-पर आघात न करे। जीवदया एक भाव है, उसको सामने रखते हुए चलना ही मानवोंका कर्तव्य है। जिसमें दया नहीं, वह मानव नहीं—मानवको दयाका भंडार होना चाहिए।

द्रव्यकी प्राप्तिके लिए, विद्या पढ़नेके लिए और धर्म-प्रचारके लिए विदेश जाना चाहिए। व्यापारकी उन्नति परदेश गमनसे विशेष होती है। समुद्रपारके अनेक द्वीपोंमें जानेसे धनागमके अनेक नये नये मार्ग निकल आते हैं। देखा जाता है कि जिस कौमके लोग विदेशभ्रमण अधिक किया करते हैं, वे अधिक उद्योगी होते हैं और वे धन भी अधिक कमाते हैं। नीतिकारने भी कहा है—"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी" लक्ष्मी उद्योगी पुरुषसिंहके पास आती है।

जैनाचार्योंका मत है कि कहीं जाओ, कोई भी काम करो, कैसा ही पहिनावा पहिनो, पर केवल यह देख लो कि अपनी धर्मश्रद्धामें अंतर तो नहीं आया है। अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, अधिक परिग्रह, मांस, मदिरा तथा परस्त्री-सेवनसे बचे रहकर दुनियामें निर्भय विचरण करो, कहीं कुछ भय नहीं है। जैनाचार्योंने गृहस्थ श्रावकोंके धर्मसाधनके बहुतसे दरजे बतलाए हैं, उनमेंसे पाक्षिक श्रावकका दरजा सबसे कम है। इस दरजेवालेको मद्यमांसके सेवन, चोरी शिकार या जुआ खेलने और वेश्या तथा परस्त्री-गमन करनेका निषेध रहता है। उसको मांसाहारी-आदिकी छुई हुई वस्तुओंके न खानेका पक्का नियम नहीं रहता है, परंतु यथाशक्य उनसे बचनेके लिए उसे अभ्यास करना होता है। यद्यपि वह मांसभक्षियोंके हाथकी छुई हुई वस्तुएँ यथाशक्ति नहीं खाता है, परंतु जिन देशोंमें ऐसा बचाव नहीं हो सकता है उन देशोंमें वह अपना काम

साधनेके लिए जाता है और ऐसा करनेसे उसकी प्रतिज्ञामें बाधा नहीं आती है। इससे आगेके दरजोंमें अवश्य ही मांसमद्यसेवीका स्पर्शित भोजन करनेका त्याग होता है। वह परदेश जानेके लिए जहाँ अपने नियमके अनुकूल भोजनका प्रबंध कर सकता है वहाँ जाता है और जहाँ नहीं कर सकता, वहाँ नहीं जाता। अथवा कभी कोई धर्म या परोपकारका काम करनेके लिए जाता है और वहाँ नियममें कमी आती है तो उस दोषको सत् हेतुके कारण सह लेता है। गृहस्थके लिए धनागम एक आवश्यक वस्तु है। उसकी प्राप्तिका मुख्य उपाय उद्योग और व्यापार है। कहा है—" व्यापारे वसति लक्ष्मी "—व्यापारमें लक्ष्मी बसती है। इस लिए उद्योगी मनुष्यको चाहिए कि अपने देशमें जो कच्चा माल पैदा होता है, यथा—रुई, सन आदि इनके कपड़े अपने ही देशमें बनवावे और उन वस्त्रोंकी स्वदेश तथा परदेशमें विक्री करे। भारतवर्षमें पहले इतना अधिक वस्त्र तैयार किया जाता था कि भारतवासी अपना शरीर अपने देशके बने हुए कपड़ेसे तो ढाँकते ही थे; साथ ही समुद्रपारके दूर दूर देशोंके बाजारोंमें भी ले जाकर बेंचते थे। यही कारण है कि उस समय देश धनसम्पन्न था; परन्तु जबसे अँग्रेज आदि परदेशी भारत-सरकारकी मददसे अपना माल भारतके बाजारोंमें भरकर और सस्ता करके बेचने लगे हैं, तबसे इस देशके उद्योग-धंदे सब मारे गए हैं। भारतवासी परदेशवालोंको प्रतिवर्ष अनेक वस्तुओंके बदलेमें करोड़ों—अरबों रुपया देकर धनहीन होते जा रहे हैं। भारतीय मनुष्य यदि यह चाहते हैं कि हमारी दरिद्रता दूर हो और हम धनके पात्र बनें, तो उनको यथासंभव अपने देशकी बनी हुई वस्तुओंको व्यवहारमें लाना चाहिए। स्वदेशी उद्योग-धंदों और वाणिज्यकी वृद्धिके लिए केवल यही एक मंत्र उपयोगी है कि हम स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार करें और

परदेशी वस्तुओंको विषवत् त्याज्य समझें। बाप-दादोंका धन होनेपर भी प्रत्येक गृहस्थको धनागमके लिए अर्थ पुरुषार्थ करना चाहिए। जो गृहस्थ होकर धन कमानेका उद्योग नहीं करते हैं, वे आलसी, रोगी, जुआरी और अन्यायी बन जाते हैं। उन्हें निर्धन होकर अंतमें दुःख उठाना पड़ता है। जो गृहस्थ धर्मसाधनमें अधिक समय लगाते हैं, उनके लिए धन होते हुए धन कमानेका उद्योग करना आवश्यक नहीं है। क्योंकि वे आलसी तथा व्यसनी नहीं बनते हैं, किन्तु अपना तथा दूसरोंका सदा उपकार किया करते हैं।

यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक गृहस्थ एक मर्यादा बाँध ले कि इतनी सम्पत्ति हो जानेपर मैं धनागमकी चिन्ता छोड़कर अपने जीवनको परोपकार तथा धर्मसेवनमें व्यतीत करूँगा। ऐसी कोई हद न रखनेसे धनागमकी तृष्णा बढ़ती जाती है और मनुष्य वृद्ध होनेपर भी अधिकाधिक धनसंग्रहकी चिन्तामें फँसता जाता है, फलतः उसे सुख-शान्ति तथा धर्मसेवनके लिए अवकाश नहीं मिलता है। इस लिए अपनी आवश्यकता और इच्छाके अनुकूल धन हो जानेपर गृहस्थोंको अपना जीवन परोपकारमें लगाना चाहिए, अर्थात् समाज या देशकी सेवा करनी चाहिए। धनागमकी चिन्ता छोड़ देने या पेंशन लेनेपर आलसी बनकर दिन बिताना बुरा है।

समाज या देशमें बेकारी न बढ़ने पावे इसके लिए यह आवश्यक है कि यंत्रोंकी बनी चीजोंका व्यवहार न किया जाय, या बहुत कम किया जाय। जो काम हजारों आदमी हाथकी मेहनतसे कई दिनमें करते हैं वही काम यंत्रोंके द्वारा दो घंटेमें हो जाता है। जिसका खोटा फल यह होता है कि यंत्रोंके मालिक तो धनवान् हो जाते हैं और हजारों–लाखों

मनुष्य रोजगार तथा कामके बिना भूखों मरने लगते हैं। इस लिए समाज और देशके नेताओंका कर्तव्य है कि वे ऐसी व्यवस्था रक्खें जिससे देशमेंसे मानवरूपी यंत्र बेकार न होने पावे तथा देशके सब लोग अपनी अपनी शक्तिके अनुसार काम करके अपना पेट पालें। देशके कुछ इने गिने लोग अपनी पूँजीके बलपर कल-कारखाने स्थापित करके अतुल सम्पत्तिके स्वामी बन जायँ और देशके बहुसंख्यक जन तथा मजदूर काम न मिलनेसे भिखारी बनकर दाने दानेके लिए तरसें, ऐसी विषम अवस्था उत्पन्न न होने देना चाहिए। हमारी समझमें यंत्रोंका अत्यधिक प्रचार देशमें बेकारी बढ़ानेवाला है। इस लिए हाथकी कारीगरीका प्रचार बढ़ानेकी कोशिश करना और हाथकी बनी चीजोंको आदरकी दृष्टिसे देखना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। जिस देशके मनुष्य अपने देशके हस्तकौशलको नष्ट होनेसे बचा लेते हैं, वे कभी न तो भूखों मरते हैं और न परमुखापेक्षी होते हैं।

धन मनुष्य-जीवनके लिए एक आवश्यक वस्तु है। उसे प्रमाणिकपनसे पैदा करके उचित कार्योंमें लगाना चाहिए। धन जमीनमें गाड़ने अथवा व्यर्थ खर्च करनेके लिए नहीं है, वह अपने जीवनको सुखी बनाने तथा परोपकारमें लगानेके लिए है।

---

१४ काम पुरुषार्थ।

गृहस्थोंके लिए न्यायपूर्वक इन्द्रिय भोग करना, जिससे शरीर तन्दुरुस्त रहे, मनमें संतोष रहे तथा अनीतिसे बचाव रहे, काम-पुरुषार्थ कहलाता है। काम पुरुषार्थका मुख्य ध्येय संतान उत्पन्न करके

उसको योग्य बना देना है जिससे वंश-परम्परा बराबर चली जावे। वृक्षसे बीज होता है, बीजसे फिर वृक्ष होता है, इस तरह परम्परा चलती रहती है। इसी परम्पराकी रक्षाके हेतु सांसरिक व्यवहारमें प्रत्येक गृहस्थको कमसे कम एक संतान उत्पन्न करना आवश्यक है। संतान प्राप्तिका साधन विवाह है। यदि विना विवाहके संतानोत्पत्ति की जाय, तो ऐसी स्थितिमें कौन किसकी माता और कौन किसका पिता, ऐसा काई बन्धन न रहे, इसके अतिरिक्त उनकी रक्षा और उनके योग्य बनानेमें बहुतसी बाधाएँ उपस्थित हों, इस लिए इस कर्म-भूमिमें जहाँ राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक आदि व्यवहार नियत किये गए हैं, वहाँ उसी तरह विवाहकी प्रथा भी जारी की गई है। विवाह एक सामाजिक प्रथा या बन्धन है। समाजके नेताओंने समाजमें घटी न आने, उसकी वंशपरम्परा बनाये रखने, समाजमें नीतिका व्यवहार रखने, उसे सदाचारी बनाने तथा व्यवहारधर्ममें बाधा न आने देनेके लिए यह वैवाहिक प्रथा जारी की है। वैवाहिक नियम देशकालके अनुसार लाभ-हानिका विचार करके सदा बदलते रहते हैं।

विद्या सम्पादन कर चुकनेके बाद जब पुरुष द्रव्य कमाने योग्य हो जाय, तब उसे विवाहकी चिंता करनी चाहिए। विवाहका अधिकारी वही है जो उद्योगी, सदाचारी, शरीरसे स्वस्थ, पुरुषत्ववान् तथा पुत्र-पुत्रियोंके पालन करनेकी क्षमता रखता हो। योग्यताके बिना किसी कामको करना मूर्खता है। जो अयोग्य पुरुष किसी कामको करते हैं वे अपयश तथा कष्टके भागी होते हैं।

लड़कोंका विवाह बीस वर्ष या उससे ऊपरकी अवस्थामें और लड़कियोंका विवाह सोलह या उससे ऊपरकी अवस्थामें होना चाहिए। कमसे

कम लड़केसे लड़कीकी अवस्था चार वर्ष कम होनी चाहिए। इससे कम उम्रमें विवाह करना **बालविवाह** कहलाता है। बाल-विवाह पुरुषार्थका शत्रु तथा समाजका नाशक है। भारतवर्षमें प्राचीन कालमें बालविवाहका कोई नाम भी न जानता था। मुसलमानोंके जमानेमें इस नाशकारी प्रथाकी जड़ इस देशमें जमी थी, जो दुर्भाग्यवश आज तक बहुत विस्तृत हो गई है और हिन्दू समाजका नाश कर रही है। इस बालविवाहकी अनिष्टकारी प्रथाके कारण हमारा समाज दिन-पर-दिन निर्बलताके गढेमें गिरता चला जा रहा है। इस लिए हम लोगोंको उचित है कि हम इस कुरीतिको शीघ्र परित्याग कर दें।

सन् १९२१ की मनुष्य-गणनाकी रिपोर्ट देखनेसे बालविवाहकी भयंकर वृद्धि और उसके कुफलका पता चलता है।

भारतवर्षमें जैनसमाजके बालविवाहोंका ब्योरा:—

उम्र	विवाहित पुरुष	विवाहित स्त्री	विधुर	विधवा.
१ वर्ष	३५	५१	३	१५
१ से २ वर्ष	४०	६५	९	४
२ से ३ वर्ष	७४	१५६	८	२३
३ से ४ वर्ष	१२९	२०९	१५	२६
४ से ५ वर्ष	२०२	३८२	२३	५१
कुल ५ वर्ष तकके	४८०	८६३	५८	११९
५ से १० वर्षके	१०२१	४१४५	१४५	४५८
१० से १५ वर्षके	४१७४	१८६८६	३६२	११३२
कुल	५६७५	२३६५४	५६५	१७०९

सन् १९२१ में जैनियोंकी कुल संख्या ११,७८,५९६ थी, जिसमेंसे ६,१०,२७९ पुरुष और ५,६८,३१७ स्त्रियाँ थीं। शीघ्र विवाह करके हमने इन शक्तियोंका ऐसा सत्यानाश किया कि थोड़ी संख्यावाली जातिमें पाव लाख कन्याएँ बालविवाहकी अग्निमें झुलस डाली गईं !! यह संख्या दिनपर दिन बढ़ती जा रही है, जिसका कुफल यह हुआ है कि १७०९ बालविधवाएँ उस सालकी मनुष्य–गणनाके समय पाई गईं। यह संख्या भी प्रतिवर्ष बढ़ती जाती है। जिनकी गणना पहले १५ वर्षकी विधवाओंमें थी, उनकी उम्र बढ़ती जा रही है और उनका स्थान दूसरी नई विधवाएँ लेती जा रही हैं। कन्याओंका विवाह शीघ्र कर देनेसे यह हानि होती है कि उनका शरीर निर्बल हो जाता है और वे प्राय: शीघ्र मर जाती हैं। स्त्रीके मर जानेपर पुरुष अपना विवाह दूसरी कुँवारी कन्याओंसे कर लेते हैं, फलत: कुँवारे लड़कोंके लिए कुँवारी लड़कियोंकी संख्या घटती जाती है। इसी तरह विवाहित लड़के भी निर्बलताके शिकार बनकर मरते और बालविधवाओंकी संख्या बढ़ाते हैं। हम देखते हैं कि अविवाहित स्त्री–पुरुषोंकी संख्यामें २० वर्षमें बहुत अंतर पड़ जाता है। सन् १९२१ की मनुष्य–गणनाके अनुसार जैनोंकी संख्या देखिए—

उम्र	अविवाहित पुरुष	अविवाहित स्त्रियाँ
० से ५ वर्ष तक	६४६४६	६४९०९
५ से १० ,, ,,	७४४०२	६८५०२
१० से १५ ,, ,,	७०७०५	४३७०७
१५ से २० ,, ,,	३६३९३	४६७८

अनेक पुरुष एक साथ भी दो दो विवाह करते और एक स्त्रीके मरनेपर दूसरा, दूसरीके मरनेपर तीसरा, यहाँ तक कि अपने जीवनमें

५, ६ या ७ विवाह करते हैं। इस प्रकार एक पुरुष सात कन्याओंको हजम करके ६ कुँवारे लड़कोंका हक मार बैठता है ! इसी कारण हम देखते हैं कि जैनसमाजमें बहुतसे लड़के अविवाहित रह जाते हैं, उनके लिए लड़कियाँ नहीं मिलती हैं। प्रायः जिनका विवाह होना होता है, उनका २० वर्षकी उम्र तक हो चुकता है। सन् १९२१ की मनुष्य-गणनाकी रिपोर्ट देखनेसे माळूम होता है कि नीचे लिखे अनुसार ६३,२४९ युवक अविवाहित अवस्थामें जन्म तेर करके चले गए और वे संतान उत्पन्न करनेके कर्तव्यसे बंचित रहे। क्योंकि उनके विवाह न हो सके, उनको विवाहके लिए कन्याएँ नहीं मिलीं। जो धनशाली होते हैं, उनको कन्याएँ वृद्धावस्थामें भी मिल जाती हैं और साधारण स्थिति-वाले यों ही मुँह तकाते रह जाते हैं।

अविवाहित पुरुष

उम्र	संख्या
२० से २५ वर्ष	२१,०१२
२५ से ३०	१४,७६२
३० से ३५	८,८७७
३५ से ४०	५,४७८
४० से ४५	४,६१४
४५ से ५०	२,५६८
५० से ५५	२,५७७
५५ से ६०	१,११९
६० से ६५	१,२५३
६५ से ७०	४३८
७० से ऊपर	५५१
	जोड़ ६३,२४९

इसी तरह सन् १९२१ की गणनामें उन हिन्दुओंका हाल देखिए जिनको सनातनी कहते हैं और जिनकी गणना मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टमें अलग बतलाई गई है । सनातनी हिन्दुओंमें बालविवाह नीचे लिखे प्रमाण हुए हैं:—

उम्र	विवाहित पुरुष	विवाहित स्त्री	विधुर	विधवा
०–१ वर्ष	५,९९५	७,०३८	२९६	५९७
१–२	५,६६५	९,८६३	३२९	४९४
२–३	१३,८२७	२६,७२६	८०७	१,२५७
३–४	२३,०५१	५०,६३७	१,३४८	२,८३७
४–५	४३,१४४	८८,८९३	२,५५६	६,७०७
कुल ५ वर्षके भीतर	९२,४८२,	१,८३,९५७,	५,३३६,	११,८९२
५ से १० वर्ष	६,६१,४५८,	१७,१४,७३८,	३५,२८३,	८५,०३७
१० से १५ ,,	१९,७५,६२७,	४९,४७,३६६,	९४,१४१,	२,३२,१४७
जोड़	२७,२९,५६७,	६८,४६,०६१,	१,३४,७६०,	३,२९,०७६

सन् १९२१ में हिन्दुओंकी कुल संख्या २१,६२,३७,७९७ थी, जिनमेंसे पुरुष ११,०६,२६,५९६ और स्त्रियाँ १०,५६,११,२०१ थीं । बालविवाहकी कुप्रथाके कारण २७ लाख बालक और ६८ लाख बालिकाएँ असमयमें विवाही गईं । यह कितना भीषण जुल्म हुआ ! उनकी शक्तियोंको प्रफुल्लित न करके उनको असमयमें गृहस्थीके फंदेमें डाल दिया । इसका कुफल यह हुआ कि १३४७६० बालक विधुर और ३२९०७६ बालिकाएँ विधवा बनकर बैठ गईं ! बालविवाहकी भयंकर प्रगति देखकर कह सकते हैं कि यह संख्या और भी बढ़ गई होगी । इनमेंसे विधुरोंके तो प्रायः कन्याओंसे पुनर्विवाह हो जाते हैं; परंतु अधिकांश विधवाएँ बहुधा वैधव्यजीवन व्यतीत करती हैं । क्योंकि

हिन्दुओंकी उच्च जातियोंमें विधवाविवाहका प्रचार नहीं है। विधुरोंको कुमारियाँ विवाह दी जाती हैं, इस कारण हिन्दुओंमें भी २० वर्ष तककी अविवाहित कन्याएँ कुमारोंसे कम मिलती हैं। हिसाब नीचे देखिए—

उम्र—	अविवाहित पुरुष	अविवाहित स्त्रियाँ
० से ५ वर्ष तक	१,२७,९३,२७४	१,३२,२१,५७६
५ से १० ,,	१,५२,५०,४५६	१,३६,२६,३०८
१० से १५ ,,	१,१६,१५,५२२	६१,४७,९९८
१५ से २० ,,	५८,५०,३४०	११,३५,४८६

पाठकगण देखेंगे कि १० से १५ वर्षकी अविवाहित लड़कियाँ लड़कोंसे आधी हैं ! जब कि १५ से २० वर्षकी उम्रके युवक करीब ६० लाख हैं, तब उस उम्रकी अविवाहित लड़कियाँ केवल ११ लाख हैं। अर्थात् कुँवारियोंसे कुँवारे पँचगुणेसे अधिक हैं। हिन्दुओंकी उच्च कौमोंमें पुरुष एक साथ दो दो विवाह भी करते हैं और पहली स्त्रीके मरनेके बाद दूसरी, फिर तीसरी, ऐसे कई विवाह करते हैं जिसका फल यह होता है कि कुँवारी लड़कियोंकी संख्या कुँवारे लड़कोंके लिए बहुत थोड़ी रह जाती है। हिन्दुओंमें भी प्रायः २० वर्षके पहले जिन पुरुषोंके विवाह होना होते हैं, हो जाते हैं। मनुष्यगणनाकी रिपोर्टमें २० वर्षसे ऊपरके नीचे लिखे अनुसार अविवाहित पुरुष पाये जाते हैं।

अविवाहित पुरुष

उम्र	संख्या
२० से २५ वर्ष	३२,४९,१०९
२५ से ३० ,,	१७,७८,२३१
३० से ३५ ,,	८,९०,७२७

उम्र	संख्या
३५ से ४० वर्ष	४,४४,६५३
४० से ४५ ,,	३,७०,५५१
४५ से ५० ,,	१,८६,०४७
५० से ५५ ,,	१,९८,४३३
५५ से ६० ,,	७७,६०९
६० से ६५ ,,	१,०७,८६८
६५ से ७० ,,	३४,२०८
७० से उपर	६५,३४५
	७४,०२,७८१

जिस तरह जैनियोंमें ६३ हज़ार युवकोंने बिना विवाहे जिन्दगी तेर की, उसी तरह हिन्दुओंमें भी ७४ लाख युवकोंने अविवाहित रह कर अपना जीवन व्यतीत किया ।

यही कारण है कि ये दोनों कौमें प्रतिवर्ष भयंकर रूपसे घटती चली जा रही हैं—

प्रति दश हज़ार पीछे हिन्दू तथा जैन

सन्	हिन्दू	जैन
१८८१ में	७,४३२ थे	४८
१८९१ में	७,२३२ रहे	४९
१९०१ में	७,०३७ रहे	४५
१९११ में	६,९३९ रहे	४०
१९२१ में	६,८५६ रहे	३७

जैनियोंकी संख्याका खुलासा नकशा यह है:—

सन् १८९१	१४,१६,६३८
,, १९०१	१३,३४,१४०
,, १९११	१२,४८,१८१
,, १९२१	११,७८,५९६

इससे प्रकट होता है कि ३० वर्षमें २,९६,०४२ (करीब तीन लाख) जैनी घट गए। कितनी भयंकर घटी है! यदि इसी तरह घटते रहे तो १२५ वर्षमें कुल जैनजाति समाप्त हो जायगी।

हिन्दुओंकी घटती इस प्रकार है:—

सन् १८८१ में	७४.६	प्रतिशत	थे
,, १८९१ में	७३.४	,,	रहे
,, १९०१ में	७१.८	,,	,,
,, १९११ में	६९.८	,,	,,
,, १९२१ में	६८.९	,,	,,

बाँकीपुरसे निकलनेवाली 'शिक्षा' नामक पत्रिकाके तारीख १९ जनवरी संन् १९२९ के अंकमें बतलाया गया है कि यदि हिन्दुओंकी घटती इसी क्रमसे होती रही, तो आगामी ४०० वर्षोंमें हिन्दू जाति निःशेष हो जायगी।

इस भयंकर घटीके कारणोंमें एक मुख्यकारण बालविवाहकी प्रथा भी है। इस प्रथाको जितनी जल्दी हो सके समाजसे निर्मूल कर देना उचित है।

सेन्सर कमिश्नर लिखते हैं—

" The Jains are the rigid observers of the custom of early marriage and prohibition of widow re-marri-

age and like the Hindus their proportion is steadily declining."

अर्थात् जैनियोंमें बालविवाहका प्रचार और विधवाओंके पुनर्विवाहका तीव्र निषेध है, इस कारण हिन्दुओंके समान इनकी आबादीकी औसत भी लगातार घटती जा रही है।

बालविवाहके कारण छोटी वयकी स्त्रियोंके अपरिपक्व अवस्थामें गर्भ रह जाता है। उनके पति भी निर्बल होते हैं। जिसका कुफल यह होता है कि बहुतसे बच्चे पैदा होते ही मर जाते हैं।

सन् १९१८ में प्रति एक हजार पीछे १ वर्षके नीचे उम्रवाले बच्चोंकी मृत्युसंख्या

	लड़के	लड़कियाँ
कुल भारतमें	२७४	२६०
आसाममें	२२६	२०७
बंगालमें	२३५	२२०
बिहार उड़ीसा	२३८	२२५
बम्बई	२९३	२८०
मध्यप्रदेश और बरार	४१९	३७९
मद्रास	२३७	२२३
पंजाब	२६१	२९४
संयुक्तप्रान्त	३०८	२९८

पश्चिमी देशोंमें बालविवाह नहीं होते, अतएव वहाँकी माताओंके बच्चे बहुत कम मरते हैं। प्रौढ़ विवाह होनेसे सबल बच्चे पैदा होते हैं। कुछ पश्चिमी देशोंका हिसाब यह है—

प्रति हजार पीछे

न्यूजीलेंडमें	७० बच्चे मरे
नारवे	७० ,,
आस्ट्रेलिया	७८ ,,
स्वीडेन	७८ ,,
आयर्लैंड	९४ ,,
डेनमार्क	१०८ ,,
इंग्लैण्ड और वेल्स	११७ ,,
संयुक्तराज्य अमेरिका	११७ ,,

अधिक मृत्युके सम्बन्धमें सेन्सर कमिश्नर लिखते हैं:—

Girls are given in marriage at a very early age and cohabitation begins long before they are physically fit for it. To the evils of child-bearing may be added unskilful midwifery, and the combined result is successive mortality amongst young mothers. In India almost every woman has to face these dangers.

भावार्थ—लड़कियाँ बहुत छोटी वयमें विवाही जाती हैं और वे योग्य वय होनेके पहले सहवास करती हैं। छोटी उम्रमें बच्चा जनना जितना अनिष्टकारी है, मूर्ख दाइयोंका प्रबंध भी उतना ही भयावह होता है। इस सबका फल यह होता है कि बहुधा छोटी वयकी माताओंकी मृत्यु हो जाया करती है। भारतमें करीब करीब हर एक स्त्रीको इन संकटोंका सामना करना पड़ता है।

बालविवाहके कारण बालक बालिकाएँ अच्छी तरह शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाती हैं। उनका शरीर, मन और बुद्धि अपरिपक्व अवस्थामें रह

जाती है। बालविवाहकी अनिष्टकारी प्रथासे पति-पत्नी दोनोंका जीवन नीरस, निरानंद और संकटमय हो जाता है। यही नहीं, बल्कि उसके प्रभावसे सारी जाति नष्टभ्रष्ट हो जाती है। ईसाइयों और मुसलमानोंमें बालविवाह बहुत कम होते हैं। यह बात नीचेके कोष्टकसे स्पष्ट होती है—

१५ वर्षकी उम्र तकके विवाहित स्त्री-पुरुष प्रति हजार पीछे।

उम्र	हिन्दू		मुसलमान		ईसाई	
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
०-५ वर्ष	७	१४	३	६	२	३
५-१० ,,	४२	१११	१४	५०	७	१५
१०-१५ ,,	१४४	४३७	६६	३४४	२६	५८

बर्मा, कोचीन, मैसूर और ट्रावनकोर राज्यमें बालविवाह नहीं होते हैं, इस कारण उन प्रान्तोंमें १० से १५ वर्षकी उम्रके पुरुष शायद ही कोई विवाहित मिलें। आसाममें सैकड़ा पीछे २, बंगाल, मद्रास और पंजाबमें ३ से ७, बम्बईमें १३, मध्यप्रदेश, बरार और युक्तप्रांतमें २१, तथा बिहारमें २२ प्रति सैकडा बालविवाह होते हैं।

१० से १५ वर्ष तककी विवाहित लड़कियाँ सबसे कम बर्मामें हैं। वहाँ ऐसी लड़कियोंकी संख्या प्रति हजार पीछे केवल ४ है। कोचीन राज्यमें १५ वर्षसे कम उम्रकी विवाहित लड़कियोंकी संख्या प्रति हजार पीछे ५६, ट्रावनकोर राज्यमें ५४, मद्रास प्रांतमें २१८, पंजाबमें २४९, बिहारमें ४४१ तथा दक्षिण हैदराबादमें ५७० है।

इस बाल-विवाहके कारण विधवाओंकी संख्या प्रति हजार पीछे जब वर्मामें ६८ है, तब मध्यप्रदेशमें १०२, युक्तप्रांतमें १०६, मद्रासमें १२८, बिहार और आसाममें १३४, बम्बईमें १३७, और बंगालमें १६९ है।

इससे सिद्ध होता है कि यदि बालविवाह रोक दिये जावें, अर्थात् १६ वर्षके पहले लड़कियोंका और २० वर्षके पहले लड़कोंका विवाह न किया जाय, तो बालविधवाओंकी संख्या घटनेसे विधवाओंकी संख्या अवश्य कम हो जायगी।

जैसा कि हम शिक्षा-प्रकरणमें पहले बतला चुके हैं विवाहके पहले लड़के और लड़कियोंको भले प्रकार शिक्षा दी जानी चाहिए—जिसमें व्यायाम और ब्रह्मचर्य्यकी शिक्षा मुख्य है। विद्या पढ़नेकी दशामें लड़के लड़कियोंको जुदा बैठाना चाहिए। उस समय किसी भी दशामें उनका हेलमेल न होने देना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थीको यह जान लेना चाहिए कि वीर्य्यरक्षा रत्नोंकी रक्षासे भी बढ़कर है।

---

१५ उपजाति-विवाह।

काम पुरुषार्थका मुख्य साधन विवाह है। विवाह करते समय यह देख लेना चाहिए कि वर-वधूका जोड़ा योग्य है या नहीं। वर-वधू गृहस्थी रूपी गाड़ीके दो पहियोंके समान है। यदि गाड़ीके दोनों पहिये सुडौल और सुदृढ हुए, तो गाड़ी बराबर बेखटके आसानीसे चली जाती है; परन्तु जो एक पहिया सुडौल और दूसरा कुडौल या कमजोर हुआ तो गाड़ी लड़खड़ाती हुई चलेगी। इस लिए वर-वधू

दोनोंका सुशिक्षित और योग्य होना आवश्यक है । सम्बन्ध स्थिर करनेमें बहुत होशयारी और बुद्धिसे काम लेना चाहिए । क्योंकि इस सम्बन्धपर ही वर-वधूके आगामीं जीवनका सुख-दुःख निर्भर रहता है ।

भारतभूमिको कर्म-भूमि कहते हैं । भगवान् ऋषभदेवने इस कर्मभूमिकी समाजको योग्यतानुसार तीन भागोंमें विभक्त कर दिया है । जो अधिक बलिष्ठ, साहसी और रक्षक होने योग्य थे उनको क्षत्रियवर्णमें, जो व्यापार, खेती और हिसाब-किताब लिखने योग्य थे उनको वैश्यवर्णमें तथा जो मंद बुद्धि थे उनको शारीरिक परिश्रम, शिल्पकर्म और सेवाकर्म करनेके लिए शूद्रवर्णमें स्थापित किया । पश्चात् उनके सुपुत्र भरत चक्रवर्तीने इन तीनों वर्णोंमेंसे धर्मात्माओंको छाँटकर ब्राह्मणवर्ण स्थापित किया । इन ब्राह्मणोंकी कर्म-व्यवस्था यह निर्णीत की गई थी कि ये विशेष-रूपसे धर्मको पालें, विशेषरूपसे विद्या पढ़ें पढ़ावें, प्रजाको धर्ममार्ग-पर चलावें और जो कुछ मिले उसे लेकर संतोषसे अपना जीवन-निर्वाह करें । उसी समय विवाहकी यह रीति चलाई गई थी कि ब्राह्मण ब्राह्मणवर्णमें अपना विवाह सम्बन्ध करते थे और आवश्यकता पड़ने-पर वे क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रकी कन्याएँ भी ले सकते थे। क्षत्रिय क्षत्रियवर्णमें विवाहे जाते थे और विशेष अवसरपर वे वैश्य तथा शूद्रकी कन्याएँ भी ले सकते थे । इसी प्रकार वैश्य वैश्यसमाजमें विवाह करते थे और आवश्यकता पड़नेपर वे शूद्रकी कन्या भी ग्रहण कर लेते थे। यह रीति बहुत समय तक चलती रही।

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्त्री तां च नैगमः ।
वहेत्स्वान्ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्च ता ॥ २४७ ॥

—आदिपुराण पर्व १६ ।

परन्तु आगे चलकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णोंमें परस्पर (अनुलोम और प्रतिलोम भी) विवाहसम्बन्ध होने लगे। भगवान् महावीरके समयमें—जो आजसे लगभग ढाई हजार वर्ष पहले थे—ऐसे विवाह बे रोकटोक हुआ करते थे। ऐसे उपजातीय विवाहोंको कोई मनुष्य अनुचित तथा हीन कहकर निषेध नहीं करता था। श्रेणिक महाराजने, जिनका दूसरा नाम बिम्बसार था, एक ब्राह्मणकी लड़की नन्दश्रीके साथ अपना विवाह किया था। यही नहीं, उन्होंने अपनी पुत्री धन्यकुमार नामक एक वैश्यको दी थी। राजा जयसेनने भी अपनी लड़की पृथ्वीसुन्दरी प्रीतिंकर नामक वैश्यको विवाही थी। राजा उपश्रेणिकने भीलोंके राजा यमदंडकी तिलकवती कन्याके साथ विवाह किया था। महाराज चन्द्रगुप्त मौर्यने ग्रीस देशके राजा सेल्युकसकी कन्याके साथ विवाह किया था। जैन पुराणोंके देखनेसे यह भी पता चलता है कि जिन देशोंमें वर्णव्यवस्था नहीं थी, उन म्लेच्छ देशोंसे भी आर्य लोग कन्याएँ ले आते थे और उनको अपनी धर्मपत्नी बनाते थे। चक्रवर्ती राजा लोग जब दिग्विजयके लिए निकलते थे, तब अनेक देशोंके राजाओंको जीतकर उनकी कन्याओंको विवाह लाते थे। ऐसी अन्य देश, अन्य जाति और अन्य धर्मसे विवाही हुई स्त्रियोंकी संतानको जैनशास्त्रानुसार साधुव्रत धारण करने तकका अधिकार होता था। जैन पुराणोंसे यह भी विदित होता है कि जब कोई क्षत्री किसी वैश्यकी या शूद्रकी लड़कीके साथ विवाह कर लेता था तो उसको भी वह अपनी खास पत्नी कर लेता था। वैश्यपुत्रीको धर्मपत्नी बना लेनेमें तो कोई विवाद ही नहीं है। हाँ, शूद्रकन्याको धर्मपत्नी बनानेमें अवश्य ही मतभेद हो सकता है; परंतु जब श्री जिनसेनाचार्यने यह व्यवस्था दी है कि ब्राह्मण, क्षत्री या वैश्य शूद्रकन्याके साथ विवाह कर सकते हैं, तब उन्होंने दूसरे

सजातीय विवाहोंसे ऐसे विवाहोंमें कोई विशेषता नहीं बतलाई। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि शूद्र कन्याओंको विवाहनेके पहले दीक्षान्वय क्रियाके द्वारा शुद्ध करके जैनधर्मानुयायी बनाकर और फिर उनको वर्णलाभ कराके विवाह किया जाता होगा। तथापि स्पष्ट कथन न होनेसे इसका विचार बुद्धिमान पुरुषोंके निर्णयपर ही छोड़ा जाता है। इतना तो जैन पुराणोंसे बिलकुल साफ़ है कि ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य इन तीनों वर्णोंमें परस्पर विवाहसम्बन्ध होते थे तथा म्लेच्छ देशोंकी राजकन्याओं तथा इस देशके अहिन्दू या म्लेच्छ राजाओंकी कन्याओंके साथ आर्यखण्डके क्षत्रिय विवाह किया करते थे*।

वर्तमान समयमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंमें अनेक उपजातियाँ पाई जाती हैं और वे अपना अपना विवाह अपनी ही जातिकी उपजातियोंमें नहीं

---

* जैन पुराणोंके समान हिन्दू पुराण भी इसी बातकी पुष्टि करते हैं। हिन्दू पुराणोंमें असवर्ण अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहोंके सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं। यथा—शुक्राचार्य ब्राह्मणने अपना विवाह क्षत्रिय राजा प्रियव्रतकी कन्या ऊर्ज-स्वतीसे किया था। शृंगी ऋषिका विवाह शांता नामक क्षत्रिय कन्यासे हुआ था। यमदग्नि ऋषिको सूर्यवंशी राजाकी कन्या रेणुका विवाही गई थी। इसी प्रकार ऋचीक ब्राह्मणने क्षत्रिय राजा गाधिकी पुत्री सत्यवतीसे, पिप्पलादने क्षत्रिय कन्या पद्मासे, अगस्त्यने क्षत्रीवंशोद्भवा लोपामुद्रासे, रयिक्क ब्राह्मणने राजकन्या श्रुतिसे और साभीर ब्राह्मणने सूर्यवंशी प्रसिद्ध राजा मान्धाताकी कन्यासे विवाह किया था। ये तो हुए अनुलोम विवाहके दृष्टान्त, अब कुछ प्रतिलोम विवाह भी देखिए—राजा प्रियव्रत क्षत्रियने विश्वकर्मा ब्राह्मणकी पुत्री बर्हिष्मतीसे, राजा नीपने शुक्राचार्यकी कन्या कृत्वीसे, और राजा ययातिने शुक्राचार्यकी कन्या देवयानीसे विवाह किया था। ब्राह्मण दीर्घतमाका शूद्र कन्यासे विवाह हुआ था। उनसे कक्षीवान् उत्पन्न हुए। कक्षीवानका विवाह क्षत्रिय राजकन्याके साथ हुआ। प्रमत्ता ब्राह्मणीका सम्बन्ध नाईके साथ हुआ और उनसे महामुनि मतंगकी उत्पत्ति हुई। वशिष्ठपुत्र शक्तिका विवाह चांडाल कन्याके साथ हुआ था जिनके यहाँ तपोधन पराशर मुनिका जन्म हुआ। इस तरहके और भी अनेक दृष्टान्त हैं।

करते हैं, दूसरी जातियोंमें करना तो बहुत दूरकी बात है ! प्रत्येक उप-जाति दूसरी उपजातिके समान होते हुए भी अपनेको ऊँची मानती है और अपनी दूसरी उपजातियोंके साथ मिलकर भोजन करनेमें सख्त परहेज़ करती है—विवाहसम्बन्ध करना तो बहुत दूरकी बात है। इसका कुफल यह हुआ है कि सभी उपजातियोंका वैवाहिक क्षेत्र संकुचित हो गया है। इससे योग्य वर-वधू खोजनेमें दिक्कत जाती है या मिलते ही नहीं है। किसी किसी उपजातिकी संख्या तो बहुत ही कम रह गई है, उनमें विवाह सम्बन्ध करने योग्य दूरका कुल मिलना कठिनतर हो रहा है। किसी उपजातिमें लड़के अधिक हैं तो किसीमें लड़कियाँ। इस विषमताके कारण अनेक लड़के-लड़कियोंको अविवाहित रहना पड़ता है। इस स्थलपर हम सन् १९२१ की मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे यह दिखलाते हैं कि जैनियों तथा हिन्दुओंमें स्त्रियोंकी संख्या कम होते हुए भी कितनी लड़कियोंको आजीवन अविवाहित रहना पड़ता है। इसका कारण यह है कि जिन उपजातियोंमें अविवाहित लड़कोंकी संख्या अविवाहित लड़कियोंकी संख्यासे कम है, उनमें बहुतसी लड़कियोंको विवश होकर अविवाहित रहना पड़ता है। जैनियोंके यहाँ १५ वर्षकी उम्र तक शायद ही कोई कन्या अविवाहित रक्खी जाती हो, फिर भी जो रहती हैं वे इस लिए कि वर नहीं मिलते। नीचे हम पन्द्रह वर्षसे लेकर ७० वर्षकी उम्र तककी जैन कुमारिकाओंकी गणना बतलाते हैं, जिससे हमारे भाइयोंकी आँखें खुलें और वे अपनी कौमको मरती हुई दशासे जिलानेका उपाय सोचें। कौमको मरती हुई देखकर उसके बचानेका उपाय न करना जातिके मुर्दापनका लक्षण है।

उम्र	अविवाहित स्त्रियाँ
१५ से २० वर्ष तक	४१७८
२० से २५ ,,	१३३२

उम्र	अविवाहित स्त्रियाँ
२५ से ३० वर्ष तक	८९७
३० से ३५ ,,	५२७
३५ से ४० ,,	३७०
४० से ४५ ,,	३८४
४५ से ५० ,,	१९६
५० से ५५ ,,	१७९
५५ से ६० ,,	९०
६० से ६५ ,,	१२१
६५ से ७० ,,	५०
७० से ऊपर	७२
	योग ८३९६

यदि इन ८००० अविवाहित स्त्रियोंके विवाह हो जाते, तो इनके द्वारा कमसे कम १६००० संतान उत्पन्न होती और इस प्रकार जातिकी कितनी वृद्धि हुई होती ! यदि वैश्योंमें प्राचीन कालके अनुसार परस्पर उपजातियोंमें विवाहसम्बन्ध प्रचलित होता, तो यह त्रुटि न आती और आठ हजार स्त्रियाँ अविवाहित न रह जातीं। संभव है इस संख्यामें हजार पाँचसौ ऐसी जैन आर्यकाएँ भी हों, जिन्होंने बालवयसे दीक्षा ले ली है।

अब हिन्दू समाजकी कुमारिकाओंकी संख्या देखिए—

उम्र—	अविवाहित स्त्रियाँ
१५ से २० वर्ष तक	११,३५,४८६
२० से २५ ,,	३,१५,८१६
२५ से ३० ,,	१,७७,५७७

उम्र	अविवाहित स्त्रियाँ
३० से ३५ वर्ष तक	१,३६,३६९
३५ से ४० ,,	७२,५५६
४० से ४५ ,,	७८,८७६
४५ से ५० ,,	३८,०४५
५० से ५५ ,,	४४,७३८
५५ से ६० ,,	१६,४१९
६० से ६५ ,,	२८,५८०
६५ से ७० ,,	१०,३११
७० से ऊपर	२०,१६२
कुल योग	२०,६७,९३५

संभव है इनमें भी चार छह हज़ार इच्छापूर्वक आजन्म अविवाहित रहनेवाली ब्रह्मचारिणी हों। उनको बाद देकर साढ़े बीस लाख कुमारिकाएँ यदि विवाहीं जातीं, तो उनसे लगभग ५० लाख संतान उत्पन्न होती। उपजातियोंमें परस्पर विवाह संबंध न होनेसे हिन्दू और जैन दोनों जातियोंकी संख्या बराबर घटती चली जा रही है; परंतु खेद है कि अब भी वह अपनी गलतीको पहिचानकर उसका सुधार नहीं करती है।

प्राचीन कालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रत्येक वर्ण अपनेसे उच्च और हीन चारों वर्णोंमें विवाहसंबन्ध करते थे और ऐसा करनेपर भी वे नीच, पतित या अधर्मी नहीं समझे जाते थे। वर्तमान कालमें लोग पहलेके समान चारों वर्णोंमें न सही, कमसे कम अपनी अपनी जातिके भीतरी भेदों या उपजातियोंमें विवाह सम्बन्ध करने लगें, तो उनका वैवाहिक क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाय और उनकी अनेक अड़चनें

दूर होकर लड़के लड़कियोंको योग्य वधू तथा वर मिलने लगें। यह बात तो भली भाँति सिद्ध है कि उपजातियोंमें विवाहसम्बन्ध होना न तो प्राचीन कालकी पद्धतिसे विरुद्ध है और न अन्य किसी प्रकारसे दोषयुक्त है।

मुसलमानोंके राज्यमें आने जानेमें बहुत कठिनाई थी, इससे मालूम होता है कि एक ज़िले या प्रान्तका समाज अपना अलग अलग समूह बनाकर उसीमें विवाहसम्बन्ध करता था। दूर प्रान्तस्थित जाति या समाजसे उसका संबंध विच्छेद हो गया था। उस समय दूर जानेआनेमें अनेक संकट भी थे। परंतु अब समय बदल गया है। अब तो एक दिनमें बम्बईसे दिल्ली और दिल्लीसे कलकत्ता आ–जा सकते हैं। मोटरोंके द्वारा चाहे जहाँ स्वतंत्रतापूर्वक गमन किया जा सकता है। अब संकीर्णताको छोड़कर बुद्धिमानीसे काम लेनेका समय है। प्रत्येक जातिको अपनी उपजातियोंको संगठित करके उनके साथ विवाहसम्बन्ध जारी कर देना चाहिए। इससे बड़ा लाभ होगा। मरती हुई जैन या हिन्दूजातिकी रक्षा होगी। प्रत्येक जातिमें अविवाहित स्त्री–पुरुषों द्वारा जो व्यभिचार फैलता है वह रुकेगा, प्रायः सब स्त्री-पुरुषोंके विवाह सुगम हो जावेंगे और वे संतोषपूर्वक जीवन निर्वाह करने लगेंगे। संख्याकी घटीको मिटानेके लिए भी उपजाति विवाह एक प्रबल उपाय है।

१६—विधवा-विवाह ।

भारतवर्षकी कुछ जातियोंमें विधवा-विवाहका रिवाज़ नहीं है, परंतु विधुरोंका विवाह उनमें बराबर जारी है। इसका कुफल यह हो रहा है कि ये जातियाँ संख्यामें दिनपर दिन घट रही हैं। इस घटतीका एक कारण विधवा-विवाहसे घृणा करना है।

भारतवर्षमें २१ करोड़ हिन्दू हैं। इनमेंसे उन जातियोंमें जो कि ऊँची समझी जाती हैं विधवा-विवाहका प्रचार नहीं है, परन्तु बालविवाह, वृद्धविवाह, अनमेल-विवाह, कन्याविक्रय, पुत्रविक्रय आदि कुप्रथाओंका बड़ा ज़ोर है। इस कारण उन जातियोंमें विधवाएँ बहुत अधिक संख्यामें पाई जाती हैं। जिन देशोंमें विवाह प्रौढवयमें योग्य वरोंके साथ होते हैं, वहाँ इतनी विधवाएँ नहीं होती हैं। जो स्त्रियाँ विधवा होती हैं, उनमेंसे बहुत पुनर्विवाह भी कर लेती हैं। इस कारण उन देशोंमें विधवाओंकी संख्या अधिक नहीं बढ़ने पाती है। नीचे मनुष्य—गणनाकी रिपोर्टके आधारसे यह अंतर स्पष्ट दिखलाया गया है—

प्रति एक हज़ार पीछे विधवाएँ

उम्र	इंग्लेण्ड और वेल्समें (सन् १९११)	भारतवर्षमें (सन् १९२१)
०–५ वर्ष	०	·७
५ से १० ,,	०	४·५
१०–१५ ,,	०	१६·८
१५–२० ,,	०	४१·४
२०–२५ ,,	१·५	७१·५
२५–३५ ,,	१३·१	१४६·९
३५–४५ ,,	५०·५	३२५·२
४५–६५ ,,	१९३·३	६१९·४
६५ से ऊपर	५६५·९	८३४·०
कुल औसत	७३·२	१७५·०

सेन्सस कमिश्नर लिखते हैं—The large number of Indian widows is due partly to the early marriage, partly to the disparity in the ages of husbands and wives but chiefly to the prejudice against the re-marriage of widows. The higher classes of Hindus forbid it altogether, and as the custom is held to be a mark of social respectability many of the more ambitious lower castes have adopted it by way of raising their social status.

भावार्थ—भारतमें विधवाओंकी अधिक संख्या पाई जानेका एक कारण बाल-विवाहका प्रचार है, दूसरा कारण अनमेल-विवाह अर्थात् पतिपत्नीकी आयुकी अधिक विषमता है, और तीसरा परंतु सबसे प्रबल कारण विधवा-विवाहकी रुकावट है। हिन्दुओंकी उच्च कौमोंमें इसका बिलकुल प्रचार नहीं है। चूँकि विधवाविवाह न करना सामाजिक प्रतिष्ठाका चिह्न समझा जाता है, इस कारण बहुतसी नीची कौमोंनें भी अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए विधवाविवाहको रोक रक्खा है।

बड़ौदाके सेन्सस आफीसर मुकर्जी महाशय लिखते हैं—"The truth is that all such efforts are and will be powerless as long as authoritative Hindu opinion continues to regard the prohibitions of widow re-marriage as a badge of respectability."

भावार्थ—जब तक उच्च हिन्दुओंका ऐसा ख्याल बना रहेगा कि विधवाओंका विवाह न करना उच्चताका चिह्न है, तब तक बालविवाह वृद्धविवाह आदि रोकनेकी समस्त चेष्टाएँ निष्फल ही रहेंगी।

जैनियोंके सम्बन्धमें सन् १९२१ की रिपोर्टमें सेन्सस कमिश्नर लिखते हैं—

The Jains are rigid observers of the custom of early marriage, prohibition of widow remarriage; and like the Hindus their proportion is steadily declining. It stood at 49 in 1891 and now amounts to 37.

भावार्थ—जैन लोग बालविवाहके पक्के हिमायती और विधवा विवाहके कट्टर विरोधी हैं। इस कारण हिन्दुओंके समान उनकी संख्या भी बराबर घटती जाती है। सन् १८९१ में जब वे प्रति १०,००० पीछे ४९ थे तब सन् १९२१ में वे केवल ३७ रह गए हैं।

प्रति दश हज़ार जैन पीछे किस प्रान्तमें किस बेगसे कितने जैनी घट रहे हैं, यह बात नीचे दिए हुए नकशेसे प्रकट होगी—

प्रति १०००० पीछे जैनियोंकी घटी या बढ़ी ।

स्थान	१९२१	१९११	१९०१	१८९१	१८८१
समस्त भारतवर्ष	३७	४०	४५	४९	४८
प्रान्त	१८	१९	२१	२२	२३
अजमेर मेरवाड़ा	३७२	४०५	४१८	४९७	५२८
अंदमान निकोवार	०	०	२५	०	०
आसाम	५	३	३	२	०
बंगाल	३	१	१	१	०
बिहार उड़ीसा	१	१	१	१	०
बम्बई	१११	१०८	१२३	१२७	१३२
वर्मा	१	१	०	०	०
मध्यप्रदेश बरार	४९	५०	५६	५२	५५
कुर्ग	१२	६	६	७	६
दिल्ली पंजाब	९६ } १७ }	२०	२१	२१	२१
मद्रास	६	७	७	८	८
युक्त प्रान्त	१५	१६	१८	१८	१८

स्थान	१९२१	१९११	१९०१	१८९१	१८८१
रियासतें	१०४	११४	१३६	१४०	१४०
मणीपुर	३	३	०	०	०
बड़ौदा	२०३	२९४	२४७	२०८	२१४
बंगालके देशी राज्य	६	७	५	३	२
बिहारके ,,	१	०	०	०	०
बम्बईके ,,	३६०	३७५	४४६	३९१	४०६
मध्यभारत ग्वालियर	७४ } १२२ }	९४	१३१	८७	५४
मध्यप्रदेशके देशी राज्य	७	५	५	३	१
हैदराबाद दक्षिण	१५	१६	१८	२४	८
काश्मीर	२	१	१	२	०
कोचीन	१	१	०	०	०
मैसूर	३५	३०	२५	२७	२६
पंजाबके देशी राज्य	१६	१७	१६	१४	१८
राजपूताना	२८४	३१६	३४९	३३८	३७५
सिक्किम	१	०	०	०	०
युक्तप्रांतके देशी राज्य	२	४	२	३	०

नोट—जहाँ व्यापार अधिक है वहाँ कुछ बढ़ गए हैं।

सन १९२१ की युक्तप्रान्तकी सेन्सस रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि वहाँ कुल जैनी ६८,१११ हैं, तथा हजार पीछे जब हिन्दुओंमें १७९, मुसलमानोंमें १४३ और आर्यसमाजियोंमें १६८ विधवाएँ हैं, तब जैनियोंमें २२३ हैं। सबसे अधिक विधवाएँ जैनियोंमें ही हैं।

राजपूतानेमें जैनियोंकी घटीका हिसाब इस प्रकार है:—

स्थान	१९२१	१९११	१९०१	१८९१	१८८१
राजपूताना	२७९७२२	३३२३९७	३४२५९५	४१७६१८	३७८६७२
अजमेर मेरवाड़ा	१८४२२	२०३०२	१९९२२	२६९३९	२४३०८

नोट—सन् १९०१ में बहुतसे जैनी अपनेको जैन नही लिखाते थे।

सन् १९२१ की युक्तप्रांतकी सेन्सस रिपोर्टमें कमिश्नर लिखते हैं—

The only harm done by the custom of early marriage is that it must obviously swell the number of widows condemned by convention to life long celibacy. There are now 909 women to every 1000 men. The province is charged with such interference which is alleged to take the following forms:—

(1) Female infanticide, (2) Neglect of female children, (3) Early marriage and premature child. bearing, (4) Insanitary methods of midwifery, (5) Hard treatment accorded to women especially to widows, (6) Hard work done by women.

भावार्थ—बालविवाहके रिवाजसे बड़ी भारी हानि यह होती है कि विधवाओंकी संख्या बढ़ती है जिनको रूढिके वशवर्ती होकर आजन्म ब्रह्मचर्य्य पालना पड़ता है। इस प्रान्तमें १००० पुरुषों पीछे केवल ९०९ स्त्रियाँ हैं। स्त्रियोंकी घटीके निम्न लिखित कारण हैं—(१) कन्याओंकी हत्या कर डालना, (२) कन्याओंकी रक्षा करनेमें लापरवाही करना, (३) बालविवाह और अशक्त दशामें बच्चा जनना, (४)

दाइयोंका अयोग्य व्यवहार, (५) स्त्रियोंके साथ खासकर विधवाओंके साथ कठोर बर्ताव, (६) स्त्रियोंसे कठिन काम लेना।

जैनियोंमें हज़ार पुरुषोंके पीछे केवल ८४५ स्त्रियाँ हैं, तथा अग्रवालोंमें मात्र ७९४।

बम्बईके सेन्सस कमिश्नर लिखते हैं—

Average age of mothers to child birth is lowest among Jains, a little older among Hindus, considerably older among Musalmans and Christians and oldest of all among the Parsis.

भावार्थ—बच्चा जननेवाली माताओंकी औसत उम्र सबसे कम जैनियोंमें है, उससे कुछ अधिक हिन्दुओंमें, उससे अधिक मुसलमान और ईसाइयोंमें तथा सबसे अधिक पारसियोंमें है।

इसका कारण यही है कि पारसी शिक्षित हैं। उनमें बालविवाह नहीं होते हैं और जैन तथा हिन्दू अधिक संख्यामें अशिक्षित हैं, इस कारण उनमें बालविवाह बहुत होते हैं।

पंजाबके सेन्सस कमिश्नर लिखते हैं—

Taking the widows between ages of 15 and 19 as typical the Jains show the highest percentage of widows (3·2 p. c.) Hindus come next (with 3 p. c.) Musalmans next (with 2·9 p. c.) Sikhs (1·7 p. c.) and Christians 0·3 p. c.)

भावार्थ—यदि १५ से १९ वर्ष तककी विधवाओंको छाँटकर देखा जाता है, तो सबसे अधिक विधवाएँ जैनियोंमें निकलती हैं। अर्थात् जैनियोंमें प्रतिशत ३.२, उससे कम हिन्दुओंमें अर्थात् प्रतिशत ३.९,

उससे कम मुसलमानोंमें अर्थात् प्रतिशत २-९ उससे कम सिक्खोंमें अर्थात् प्रतिशत् १.७ और ईसाइयोंमें तो सबसे कम अर्थात् प्रतिशत ०.३ हैं।

पंजाब और दिल्लीमें चालीस वर्षके नीचेकी विधवाएँ भी जैनियोंमें सबसे अधिक हैं। नीचेके नक़शेमें देखिए—

एक हजार पीछे

जाति	१९२१	१९११	१९०१	१८९१	१८८१	पंजाब १९२१	दिल्ली १९२१
हिन्दू	४९	५८	४७	६८	५४	४९	४३
मुसलमान	२९	३२	३०	७२	३४	२९	२७
जैन	७९	१०१	५९	९०	६९	७७	९२

मध्यप्रदेश और बरारमें सन् १९२१ ई० में ६९७९४ जैनी थे। इनकी संख्या भी बराबर घटती चली जा रही है। सन् १९०१ में प्रति दशहज़ार पीछे ५० जैन थे, वे ही घट कर १९११ में ४५ और १९२१ में ४४ रह गए।

सन् १९२१ की गणनाके आधारपर नीचे जैन और सनातनी हिन्दुओंमें पाई जानेवाली विधवाओंकी उम्रके अनुसार संख्या दी जाती है, क्योंकि इन्हीं दोनों कौमोंमें विधवाओंकी संख्या सबसे अधिक है।

सन् १९२१ में विधवाओंकी गणना

अवस्था	जैन विधवाएँ	हिन्दू विधवाएँ
०–१ वर्ष	१५	५९७
१–२ ,,	४	४९४
२–३ ,,	२३	१२५७
३–४ ,,	२६	२८३७
४–५ ,,	५१	६७०७
कुल ५ वर्ष तक	११९	११८९२
५ से १०	४५८	८५,०३७
१० से १५	१,१३२	२,३२,१४७
१५ से २०	२,६६७	३,९६,१७२
२० से २५	५,७८१	७,४२,८२०
२५ से ३०	९,३७१	११,६३,७२०
३० से ३५	१५,१५६	१८,१८,३६३
३५ से ४०	१४,०४६	१६,९६,७७६
४० से ४५	२१,१२६	२७,९६,७२७
४५ से ५०	१३,१९६	१८,३०,९६२
५० से ५५	२१,५७८	३१,१४,२२३
५५ से ६०	८,५३३	१३,२३,४३१
६० से ६५	१७,५५४	२७,८४,१५९
६५ से ७०	४,७००	७,६०,३६६
७०से ऊपर	८,५५८	१६,८०,१५५
कुल योग	१,४३९९५	२,०२,१८,७८०

जैनियोंमें विधवाओंकी संख्या कुल स्त्री-समाजका एक चतुर्थांश है। अर्थात् कुल ५,६८,३१७ स्त्रियोंमेंसे १,४३,९९५ स्त्रियाँ विधवा हैं! विधुर केवल ६१,३७१ हैं। इसी तरह हिन्दुओंमें १०,५६,११,२०१ स्त्रियोंमें २,०२,१८,७८० स्त्रियाँ विधवा हैं, जो कि अपनी कुल संख्याकी एकपंचमांश हैं। हिन्दुओंमें विधुरोंकी संख्या ७६,०७,६१२ है। जैनियोंमें विधुर जब विधवाओंसे आधेसे कम हैं, तब हिन्दुओंमें विधुर विधवाओंसे करीब एक तृतीयांश हैं। विधुरोंकी संख्या कम होनेका कारण यह है कि उनके पुनर्विवाह हो जाते हैं और विधओंकी संख्या इसलिए अधिक है कि उनके पुनर्विवाह नहीं होते हैं।

अब हमको इस बातका विचार करना चाहिए कि विधवाओंके पुनर्विवाहकी आवश्यकता है या नहीं? मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे साफ़ प्रगट होता है कि विधवाओंको काममें न लिया जाय, तो बहुतसे युवकोंको बिना विवाहे अपना जीवन बिताना पड़ेगा। जैनियोंमें सन् १९२१ में ३,०९,३९५ अविवाहित पुरुष और १,८५,५१४ अविवाहिता कुमारियाँ थीं। यदि ये कुमारियाँ विधुरोंको न ब्याही जाकर केवल कुँवारे लड़कोंको विवाही जावें, तो भी १,२३,८८१ कुँवारे लड़के विना ब्याहके रह जाते हैं! उनके विवाहके लिए कुंवारी लड़कियाँ नहीं बचती हैं। यह मान करके कि स्त्रीसे पुरुषकी उम्र विवाहके समय ४ वर्ष अधिक होनी चाहिए, यदि हम चार वर्ष तकके पुरुषोंकी संख्याको न गिनें, अर्थात् ५१,३६७ कुमारोंको निकाल डालें तौ भी ७२,५१४ कुमार ऐसे बच रहते हैं जिनके विवाहके लिए कन्याओंका ठिकाना नहीं है और उनको अपनी इच्छाके विरुद्ध आजीवन अविवाहित रहना पड़ेगा। इस रिपोर्टसे यह भी जाना जाता है कि २० वर्षकी उम्रसे लेकर ७० वर्षसे ऊपर तकके कुँवारे पुरुष ६३,२४९ हैं। यह बात बिना किसी

सन्देहके कही जा सकती है कि जिस समाजमें ६०–७० हजार पुरुष विनासंतान पैदा किये मर जाते हैं, उस समाजकी संख्या अवश्य घटेगी। कुमारियोंके कम मिलनेका कारण यह है कि उनमेंसे बहुतोंको विधुर पुरुष कई कई बार विवाह लेते हैं।

यही दशा हिन्दू समाजकी भी है। सन् १९२१ में इनमें ५,३०,४२,०७३ अविवाहित पुरुष और ३,५०,६३,८१७ कुँवारी स्त्रियाँ थीं। यदि ये कुँवारी लड़कियाँ कुँवारोंको ही ब्याही जावें, विधुरोंको न ब्याही जावें, तो भी १,१९,७८,२५६ कुमारोंके विवाह नहीं हो सकते हैं। इनमें भी यदि ४ वर्ष तकके कुमारोंको न गिनें, अर्थात् ९८,५९,६४० पुरुषोंको निकाल दें तो भी ८१,१८,६१६ पुरुषोंके विवाह नहीं हो सकते हैं। यह हिसाब करीब करीब ठीक है, क्योंकि हिन्दुओंमें २० वर्षकी उम्रसे लेकर ७० वर्षके ऊपर तकके कुँवारे पुरुष ७४,०२,७८१ पाए जाते हैं। जिस समाजमें इतने पुरुष अविवाहित रहकर अपना जीवन बितावें, उस समाजका मरण क्यों न होगा? शान्त मनसे यदि विचार किया जाय, तो विदित होगा कि जब तक विधवाओंको गृहजीवनमें न डाला जायगा, तब तक यह त्रुटि—यह विषमता—नहीं मिटेगी।

जैनियोंमें ४० वर्ष तककी विधवाएँ ३४,७०४ और हिन्दुओंमें ६१,४६,८५७ हैं। इनमेंसे बहुतसी विधवाएँ गृहस्थ जीवनमें रहकर सुखी रह सकती हैं। क्योंकि जवान और बालविधवाओंसे यह आशा नहीं की जा सकती कि ये अपने मनके वैराग्यसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर सकेंगी। यह बिलकुल असंभव है। जिनके मनमें आत्मज्ञान, संसारसे उदासीनता, इन्द्रिय भोगोंसे विरक्तता तथा आत्मानंदका अनुभव होता है, वे ही ब्रह्मचर्य जैसे कठिन व्रतको पाल सकते हैं। किसी भी धर्ममें बलात्कार-पूर्वक ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करानेकी आज्ञा नहीं हो सकती है। तथा

यह युक्ति भी कुछ समझमें नहीं आती है कि विधुरोंके पुनर्विवाह होनेमें तो गृहीका ब्रह्मचर्य टिकता है, परंतु विधवाओंके पुनर्विवाह होनेमें चला जाता है !

ऊपर जो जनसंख्याका विवरण दिया गया है, उसको देखकर कोई भी बुद्धिमान् पुरुष इस निर्णयपर पहुँचे बिना नहीं रह सकता है कि समाजकी रक्षा विधवाविवाह प्रचलित किए बिना नहीं हो सकती है। जिन समाजोंमें यह नियम रहेगा कि कुँवारी कन्याओंको कुँवारे पुरुष भी ब्याहें और विधुर भी ब्याहें, तथा विधवाओंको विवाहकी इज़ाजत न हो, उन समाजोंमें नीचे लिखे दोष उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकते—

(१) बहुतसे कुमारोंका जन्मपर्यंत विवाह न होना ।

(२) कन्याओंको लेनेवालोंकी संख्या अधिक होनेसे कन्या-विक्रय चल जाना ।

(३) वृद्ध और अनमेल विवाह होनेसे बाल और जवान विधवाओंका अधिक होना ।

(४) बलात् शीलधर्मका पालन न कर सकनेके कारण अनेक विधओंका गुप्त व्यभिचारमें फँस जाना तथा गर्भ रह जाने-पर या तो गर्भ गिराना या घरसे निकलकर मुसलमान, ईसाई या वेश्या हो जाना ।

(५) अधिक वयवाले अविवाहित पुरुषोंका शील न पाल सकनेके कारण वेश्यासक्त या परस्त्रीरत हो जाना अथवा अपनी समा-जकी विधवाओंको ही भ्रष्ट करना ।

(६) विधवाओंका अनाथ हो जाना और इससे उन्हें अपने पालन पोषणका घोर कष्ट उठाना ।

(७) समाजमें भीतर भीतर व्यभिचारका ज़ोर बढ़ना—व्यभिचारिणी विधवाओंके द्वारा सधवाओंका भी व्यभिचारिणी हो जाना।

(८) संतति कम होकर संख्याका घट जाना।

अधिक संख्यामें पुरुषोंके अविवाहित रहने तथा विधवाओंका विवाह न होनेसे जो दोष उत्पन्न होते हैं, वे ऊपर बतलाये गए हैं। जिन समाजोंमें विधुर-विवाह जारी हैं और विधवाओंके विवाहका निषेध है, उन समाजोंमें बुद्धिमान् पुरुष इन दोषोंको भली भाँति देख सकते हैं। यदि कोई कहे कि हम विधुरोंका विवाह बंद कर देंगे, तब तो विधवाओंके विवाहकी आवश्यकता न रहेगी? तो इसका उत्तर यह है कि विधुर पुरुष जो जवान या संतानहीन हैं, वे कभी इस नियमको न मानेंगे, नर-प्रकृतिको देखते हुए इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता है। यदि उनको बलात् विवाहसे रोका जायगा, तो वे वेश्यागामी या परस्त्रीगामी होकर अधिक भ्रष्ट और असदाचारी बन जायँगे। उनका जीवन संतोषसे न बीतेगा और वे घरमें गृहिणीके बिना खानपानादि और गृहप्रबंधकी कमीको न सह सकेंगे। जब विधुर-विवाहका रुकना असंभव, अप्राकृतिक तथा असदाचारका कारण है, तब विधवा-विवाहका प्रचार किए बिना उपरि लिखित आठ दोष नहीं मिट सकते हैं। यदि समाज ऐसा नियम बना दे कि कुँवारी लड़कियाँ कुँवारे लड़कोंको ही ब्याही जावें, जब योग्य कुँवारे लड़के न मिलें तभी विधुरोंसे ब्याही जायँ; अधिकतर विधुरोंके ब्याह उनकी वयसे कुछ कम वयकी विधवाओंके साथ ही किये जावें, तो समाजको निम्नलिखित लाभ होंगे—

(१) कोई कुँवारा लड़का अविवाहित न रह सकेगा। प्रायः सब लड़कोंके लिए लड़कियाँ मिल जायँगी।

(२) कन्याओंको ब्याहनेका अधिकार वृद्ध या बड़ी आयुके पुरुषोंको न रहनेसे कन्या-विक्रयकी-प्रथा, जो कि गुलामीके व्यापारसे कम खराब नहीं है, बिलकुल उठ जायगी।

(३) जब विधुरोंका विवाह विधवाओंसे होने लगेगा, तब बाल-विधवाओंकी संख्या बहुत कम रह जायगी, तथा यदि बालविवाह बिलकुल बंद हो गए, तो बाल-विधवा एक भी न मिलेगी।

(४) विवश होकर विधवाओंका व्यभिचारमें फँसना, गर्भपात करना और घरसे निकल जाना बिलकुल बंद हो जायगा। जो मनसे भावपूर्वक शीलव्रत पाल सकेंगी, वे पवित्र जीवन बिताएँगीं, शेष जो असमर्थ हैं वे पुनर्विवाह करके सुखसे संसार चलाएँगी।

(५) अविवाहित पुरुष वेश्यागामी या परस्त्रीरत होनेसे बचेंगे, क्योंकि उनके विवाह हो जाया करेंगे।

(६) गरीब विधवाओंको पालन-पोषणका कष्ट न उठाना होगा। वे पुनर्विवाह करके गृहस्वामिनी बनेंगीं।

(७) समाजमें बड़ी उम्रके अविवाहित पुरुषों और विधवाओंके द्वारा जो व्यभिचार होता है, वह बन्द हो जायगा।

(८) अविवाहित तथा विधुर युवकों और जवान विधवाओंमें जो प्रकृतिदत्त संतानोत्पादन शक्ति रहती है, उसका उपयोग होनेसे अधिक संतान पैदा होगी। इससे जैन और हिन्दू समाजकी वर्तमान संख्या-घटीकी चिन्ता बहुत अंशोंमें मिट जायगी।

विधवा-विवाहके प्रचारसे उक्त लाभ होंगे। विधवाविवाह भी उसी तरह पवित्र और वैध माना जाना चाहिए जिस प्रकारकी कन्या-विवाह माना जाता है। विवाहका सम्बन्ध जन्मभरके लिए पक्का होना चाहिए। ऐसा होनेसे स्त्री-पुरुष दोनोंको संतोष रहेगा और वे परस्पर एक दूसरेके

जीवनसंगी बनकर रह सकेंगे। क्षणिक या टूट जानेवाले सम्बन्धको विवाह नहीं कह सकते हैं। यह बात अवश्य है कि विवाह करते समय परस्पर गुण-स्वभावको परख लेना चाहिए। यद्यपि माता पिता या संरक्षक कन्याओं तथा वयस्क विधवाओंके विवाहसम्बन्ध ढूँढ़ सकते हैं, तथापि वह सम्बन्ध ठीक है या नहीं, इस बातकी दिलजमई विवाह करनेवाले स्त्री-पुरुषको भी कर लेनी चाहिए, क्योंकि उन दोनोंको ही प्रेमभावसे रहकर जन्मभर गृहस्थीरूपी गाड़ी चलानी पड़ेगी। जो कन्याएँ या विधवाएँ प्रौढ़ वयकी हैं, वे प्राचीन स्वयंवरकी प्रथाके अनुसार स्वयं अपना सम्बन्ध ढूँढ़ सकती हैं।

सामाजिक जीवन और सामाजिक रक्षाके लक्ष्यको ध्यानमें रखते हुए यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि वर्तमानकालमें विधवा-विवाहके बिना काम नहीं चल सकता है। जो लोग अपनेको धर्मका अधिक ज्ञाता समझते हैं, वे यही विरोध सामने लाते हैं कि विधवा-विवाह धर्मसे विरुद्ध है। हम इस बातका समाधान आगे करते हुए यह भले प्रकार प्रमाणित करेंगे कि विधवाओंका पुनर्विवाह उसी प्रकार धर्मसे विरुद्ध नहीं है जिसप्रकार विधुरोंका पुनर्विवाह धर्मसे विरुद्ध नहीं है।

जैनसिद्धान्तने श्रावकाचारमें जो पाँच अणुव्रत बतलाए हैं, वे स्त्री तथा पुरुष दोनोंके लिए हैं। स्त्रियोंके लिए कोई जुदा श्रावकाचार नहीं पाया जाता है। इन पाँच अणुव्रतोंमें ब्रह्मचर्य चौथा अणुव्रत है। श्री अमितगति आचार्य सुभाषितरत्नसंदोहमें लिखते हैं—

मातृस्वसृसुतातुल्या निरीक्ष्य परयोषितः।
स्वकलत्रेण यस्तोषश्चतुर्थं तदणुव्रतम्॥ ७७८॥

भावार्थ—परस्त्रीको माता, बहिन, या पुत्रीके समान देखकर अपनी स्त्रीमें संतोष करना चौथा अणुव्रत है।

श्रीसमन्तभद्राचार्यने रत्नकरंडमें कहा है:—

न तु परदारान् गच्छाति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसंतोषनामापि ॥ ५९ ॥

भावार्थ—पापके भयसे जो न परस्त्रीगमन करता है और न दूसरोंको परस्त्रीगमन कराता है, वह परदारात्यागी तथा स्वस्त्रीसंतोषव्रती कहलाता है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें श्रीअमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं—

यो निजकलत्रमात्रं परिहर्तुं शक्नुवंति नहि मोहात्।
निःशेषशेषयोषिन्निषेवणं तैरपि न कार्यम् ॥ ११० ॥

भावार्थः—जो मोहके कारण केवल अपनी स्त्रीको नहीं छोड़ सकते हैं, उनको अन्य सर्व स्त्रियोंका सेवन नहीं करना चाहिए।

श्रीपद्मनंदिमुनि धम्मरसायणमें कहते हैं—

मायावहणिसमाओ दट्ठव्वाओ परस्स महिलाओ।
सयदारे संतोसो अणुव्वयं तं चउत्थं तु ॥ ९४६ ॥

भावार्थ—दूसरोंकी स्त्रियोंको माता बहनके समान देखना चाहिए। जो अपनी स्त्रीमें संतोषी है, वह चौथा अणुव्रती है।

श्रीपूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धिमें चौथे अणुव्रतका लक्षण कहते हैं—

"उपात्ताया अनुपात्तायाश्च परांगनायाः संगान्निवृत्त-रतिर्गृहीति चतुर्थमणुव्रतम्।"

भावार्थ—विवाहित या अविवाहित परस्त्रीके संग रति न करना चौथा अणुव्रत है।

इन सब उद्धरणोंसे साफ़ प्रकट है कि श्रावकाचारोंमें पुरुषकी अपेक्षा लेकर कथन किया गया है। जब पुरुषके लिए चौथे व्रतका प्रयोजन यह है कि वह अपनी स्त्रीके सिवा अन्य सब स्त्रियोंका त्यागी हो, तब इसी

तरह स्त्रीके लिए भी इस व्रतका प्रयोजन यह है कि वह अपने पतिके सिवा अन्य सब परपुरुषोंकी त्यागिनी हो। वास्तवमें स्वस्त्री या स्वपुरुष उसे ही कहते हैं, जिसके साथ नियमानुसार विवाह हुआ हो। विवाहिता स्त्रीमें संतोष रखना जैसे पुरुषके लिए धर्म है, वैसे ही विवाहित पुरुषमें संतोष रखना स्त्रीके लिए धर्म है। यही दोनोंका अणुव्रत है। अब यदि दैवयोगसे किसी पुरुषकी स्त्री मर जाय, तो वह किसीको अपनी स्त्री बना सकता है या नहीं? इस प्रश्नका समाधान यह है कि यह व्रत ऐसा नहीं कहता है कि जन्मभरमें एक ही स्त्रीसे विवाह किया जाय, किन्तु वह कहता है कि सिवा विवाहिता स्त्रीके अन्य स्त्रियोंकी तरफ मोह न रखना चाहिए, चाहे वह अपने जीवनमें एक स्त्रीको ब्याहे या उसके पीछे दूसरी और तीसरीको। जिसके साथ विवाह नहीं हुआ, उसके साथ रमण करना परस्त्रीरमणका दोष है। विवाहिता स्त्रीमें रति करना गृहीका अणुव्रत है। इसी तरह स्त्रीके लिए भी अपने पतिमें अनुरक्त रहना तथा परपुरुषकी इच्छा न रखना विधेय है; किन्तु जब पुरुषका देहान्त हो जानेपर वह विधवा हो जाय—विधवा शब्दका अर्थ यह है—'विगतो धवो यस्याः' जिसका पति दूर हुआ (मर गया) हो, तब उसे अपने भावोंकी ओर देखना चाहिए। यदि वह अपना शेष जीवन ब्रह्मचर्य्यपूर्वक पाल सके, तब उसे पुनर्विवाह न करना चाहिए, किन्तु यदि उसके मनमें इतना आत्मबल न हो, तो उसको संतोष रखनेके लिए यही उचित है कि वह किसी पुरुषके साथ पुनर्विवाह कर ले। विधवा यदि ऐसा करे, तो उसके एकदेश ब्रह्मचर्य या चौथे अणुव्रतमें कोई बाधा नहीं आ सकती है। जैनसिद्धान्तमें भाव ही प्रधान माना गया है। भावसहित क्रियापालनका उपदेश दिया गया है। कोई ऐसी युक्ति नहीं है, जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि प्रत्येक स्त्रीसे—जो विधवा हो—बलात् पूर्ण ब्रह्मचर्य्यव्रतका पालन करवाना ही चाहिए।

विधुरके पुनर्विवाह करानेमें जो हेतु है, वही हेतु विधवाके पुनर्विवाह करानेमें भी है और वही हेतु किसी कुमार या कन्याके विवाहका भी हुआ करता है। जहाँ समान हेतु हो, वहाँ समान कार्य अवश्य किये जा सकते हैं। जैनाचार्य स्वामी अकलंकदेवने राजवार्तिकमें विवाहका लक्षण बतलाया है—" सद्वेद्यचारित्रमोहोदयाद्विवहनं विवाहः" अर्थात् सातावेदनीय और चारित्रमोहके उदयसे वरना ही विवाह है। विवाहका हो जाना सातावेदनीयका फल है। क्योंकि इससे असंतोषीको संतोष हो जाता है, परंतु विवाह करनेकी तीव्र इच्छा चारित्रमोहके उदयसे होती है। वेद नाम नोकषाय कामभावनाका प्रेरक है। इस कषायके उदयका जोर प्रत्येक स्त्री तथा पुरुषको हुआ करता है। विधवा स्त्रीमें जब कामकी इच्छा धधक रही हो, तब उसके लिए विवाहका हेतु उसी तरह मौजूद है जिस तरह कन्याके लिए।

यदि यह हठ किया जाय कि विधवाओंको तो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना ही चाहिए, चाहे वह रो रो कर पाले चाहे खुशीसे पाले, तो वह विशुद्ध अत्याचार है। जिस किसीसे अन्नपानका त्याग नहीं हो सकता है उसको यह आज्ञा करना कि उपवास करना ही पड़ेगा, उसके लिए व्रत नहीं एक दंड है। व्रत वही कहलाता है, जो इच्छा या रुचिपूर्वक धारण किया गया हो। कोई कारण नहीं है कि हम विधवाओंको जन्मभर तक बलात् शील पालनेका दंड दें। उनको उपदेश दे सकते हैं कि वह चाहे तो पूर्ण शील पाले अथवा गृही धर्ममें रहकर अणुव्रत पाले—जैनसिद्धान्तका तो यही रहस्य है।

जैनसिद्धान्तके अनुसार आगे और भी विचार किया जाय, तो मालूम होगा कि श्रावक या श्राविकाके व्रत पालनेकी जो ग्यारह श्रेणियाँ हैं,

उनमेंसे सातवीं श्रेणी या प्रतिमाका नाम ब्रह्मचर्य्य प्रतिमा है। इस श्रेणी-वालेको नियमसे स्त्रीमात्रका त्याग होता है। यह वह दरजा है जहाँ अनन्तानुबन्धी कषाय जो सम्यग्दर्शनको रोकता है तथा अप्रत्याख्यानावरण कषाय जो श्रावकके व्रतोंको रोकता है, दोनों दबे रहते हैं, तथा प्रत्याख्यानावरण कषाय जो मुनिव्रतको रोकता है मंद होता है। ऐसी दशा उसकी होती है जो आत्मज्ञानी तथा वैरागी हो, रातदिन धर्मप्रेममें निमग्न रहता हो, जो प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल ध्यानका अभ्यासी हो, अष्टमी, चतुर्दशीको मासमें चार दिन उपवास करता हो, रात्रिको जल तक न पीता हो, जो शुद्ध अल्पाहार करता हो, पान आदि शौककी चीज़ोंका त्यागी हो, शृंगार छोड़कर उदासीन वेषसे रहता हो और जिसको संसार असार तथा ब्रह्मरस सार दिखता हो। ऐसी योग्यता जिस पुरुष या स्त्रीकी हो, वही पूर्ण ब्रह्मचर्य्य पालन करनेका अधिकारी होता है। विधुर या विधवा दोनोंको पहले तो इस उत्तम मार्गको ग्रहण करनेकी उत्कंठा होनी चाहिए; परन्तु जो परिणाममें ऐसी शक्ति न हो तो कोई जैनाचार्य यह नहीं कहता है कि उसे बलात् ब्रह्मचर्य व्रत पालन कराना चाहिए। ऐसी दशामें विधुर और विधवा दोनोंके लिए पुनर्विवाह करके एकदेशीय या अणुरूप ब्रह्मचर्य्य पालन करनेका मार्ग खुला हुआ है।

जैनसिद्धान्तमें कामभोग करनेकी न्यायरूप पद्धतियाँ देशकालानुसार भिन्न भिन्न प्रकारकी पाई जाती हैं। वास्तवमें विवाह एक लौकिक नियम है, इसको चाहे जिस तरह काममें ले सकते हैं, मात्र देखना यह होगा कि हमारे श्रद्धान या व्रतोंके पालनेमें कोई वाधा तो नहीं आती है? एक विद्वान्ने लिखा है—

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः ।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ॥

अर्थात् जैनियोंको वे सब नियम मान्य होंगे, जिनमें सम्यकत्व और व्रतमें हानि न आवे । एक समय वह था जब भोगभूमि थी और युगल स्त्री-पुरुष पैदा होते थे । उस समय यही रिवाज़ था कि वे ही पति-पत्नी होते थे । देवोंमें यही रिवाज़ है । देवी-देव एक स्थान विशेषके सेवक होते हैं । उस स्थानपर जो देव होगा, उसकी देवी सेवा करेगी । यदि कोई देव मर जाय और उसकी भोगी हुई देवी जीवित हो, तो उसके स्थानपर जो दूसरा देव जन्मेगा उसकी भी वह देवी या पत्नी मानी जायगी । देवपर्यायमें किसी भी देवीको विधवापनेका दुःख नहीं भोगना पड़ता है ।

दिगम्बर जैनपुराणोंमें जो महान् पुरुषोंके चरित्र हैं, उनमें कोई उदाहरण विधवा-विवाहका नहीं मिलता है; परन्तु इतनेसे ही इस प्रश्नपर विचार करना बंद नहीं किया जा सकता है । संभव है, उस समय स्त्रियोंकी संख्या बहुत अधिक हो, या बाल या प्रौढ़ उम्रकी स्त्रियाँ बहुधा विधवा ही न होती हों और जो स्त्रियाँ विधवा होती हों वे अधिक उम्रकी और सो भी बहुत कम संख्यामें होती हों । ऐसे ही कुछ कारणोंसे पहले उसका रिवाज़ न हो, परंतु इस समय जैन और हिन्दू समाजकी परिस्थिति भिन्न प्रकारकी है । इस समय स्त्रियोंको बलात् ब्रह्मचर्य पलवानेसे समाजकी संख्या दिनपर दिन घटती जा रही है, और गुप्त पापोंकी संख्या हदसे ज्यादः बढ़ रही है । मानव-हिंसा सबसे बड़ी अक्षम्य हिंसा है । समाजके इस बलात् ब्रह्मचर्यके नियमसे विधवाओंको लाचार होकर गर्भ गिराना पड़ते हैं, भ्रूण हत्याएँ करनी पड़ती हैं, अनेक स्त्रियाँ विधर्मियोंके घर जाकर हिंसक बन जाती हैं और अनेक वेश्यायें बनकर बाजारमें बैठ जाती हैं । जैन-

सिद्धान्त ऐसा निर्दयी नहीं है, जो पात्रापात्रका विचार किए बिना किसी व्रत या ब्रह्मचर्य्यके वजनको बलात् किसीकी छातीपर चढ़ा देनेकी आज्ञा देता हो। जैनसिद्धान्तमें दया और विवेकका भाव कूट कूटकर भरा हुआ है, इस लिए यह सिद्धान्त किसी विधवाको तड़फते हुए तथा आर्तध्यान या रौद्रध्यानसे दिन गमाते हुए देखना नहीं चाहता है। वह साफ़ साफ़ बतलाता है कि या तो दिलसे ब्रह्मचर्यका पालन करो या गृही बनकर रहो। इस सिद्धान्तमें विधुर और विधवाके लिए एकसा नियम है।

अब हम हिन्दूधर्मके ग्रन्थोंकी ओर दृष्टि डालते हैं कि उनका इस विषयमें क्या मत है। वास्तवमें वहाँ भी ब्रह्मचर्य्यके ये दो ही भेद हैं जो ऊपर बतलाए गए हैं। इसके सिवा हिन्दूशास्त्रोंने स्पष्टरूपसे विधवा-विवाह करनेकी आज्ञा दी है।

श्रीयुक्त पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय एम० ए० लिखित—"विधवा-विवाह-मीमांसा" नामक पुस्तकके आधारसे नीचे लिखे श्लोक तथा उद्धरण दिये जाते हैं—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।
उत्पादयेत् पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते॥

(मनुः; अ० ९, श्लोक १७५)

अर्थ—जो स्त्री पतिद्वारा परित्याग की गई हो, जिसका पति मर गया हो, वह अपनी इच्छासे फिर भार्य्या बनकर जिस पुत्रको उत्पन्न करे, वह पुत्र पौनर्भव कहलाता है।

अष्टौ वर्षाण्युदीक्षेत ब्राह्मणी प्रोषितं पतिम्।
अप्रसूता तु चत्वारि परतोऽन्यं समाश्रयेत्॥

(नारदस्मृति अ० १२, श्लोक ९८)

भावार्थ—ब्राह्मणी परदेश गए हुए पतिकी आठ वर्ष राह देखे और यदि सन्तानरहित हो तो चार वर्ष, इसके पीछे दूसरे पतिका आश्रय ले।

नष्टे मृते परिव्राजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

(पराशरस्मृति अ० ४, श्लोक ३०)

भावार्थ—पतिके खोने, मरने, संन्यासी, नपुंसक या पतित होने आदि पाँच आपत्तियोंमें स्त्रियोंको दूसरा पति करनेकी विधि है।

कन्याऽवाक्षतयोनिर्वा पाणिग्रहणदूषिता।
पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनः संस्कारमर्हति॥

(नारद, अ० १२, श्लोक ४६)

अर्थात् कन्या हो या अक्षतयोनि बाल-विधवा हो, जिसका केवल पाणिग्रहण ही हुआ हो, उसको पुनर्भू कहते हैं और वह फिर संस्कार करानेकी अर्थात् पुनर्विवाहकी अधिकारिणी है।

अनुत्पन्नप्रजायास्तु पतिः प्रेयाद्यदि स्त्रियाः।
नियुक्ता गुरुभिर्गच्छेद् देवरं पुत्रकाम्यया॥

(नारद०; अ० १२, श्लोक ८०)

भावार्थ—यदि किसी ऐसी स्त्रीका पति मर जावे जिसके कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई हो, तो बड़ोंकी आज्ञानुसार वह पुत्रकी कामनासे देवरके साथ नियोग (सम्बन्ध) कर ले।

या च क्लीबं पतितमुन्मत्तं वा भर्त्तारमुत्सृज्यान्यं पतिं
विन्दते मृते वा सा पुनर्भूर्भवति।

(वसिष्ठस्मृति, अध्याय १७)

भावार्थ—जो स्त्री नपुंसक, पतित, पागल या मरे पतिको छोड़कर अन्य पतिसे विवाह करती है, वह पुनर्भू कहलाती है।

पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मंत्रसंस्कृता ।
सा चेदक्षतयोनिः स्यात् पुनः संस्कारमर्हति ॥

(वशिष्ठस्मृति, अध्याय १७)

भावार्थ—विवाह होते ही पतिके मरनेपर यदि बाला स्त्रीका केवल मंत्रोंसे संस्कार मात्र हुआ हो और वह अक्षतयोनि हो, अर्थात् पतिके साथ संभोगको प्राप्त न हुई हो, तो फिर उसका विवाह कर देना योग्य है ।

बलाच्चेत् प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता ।
अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा ॥ १५ ॥
निसृष्टायां हुते वापि यस्यै भर्त्ता म्रियेत सः ।
सा चेतदक्षयोनिः स्याद् गतप्रत्यागता सती ।
पौनर्भवेन विधिना पुनःसंस्कारमर्हति ॥ १६ ॥

(बौधायन-धर्मशास्त्र पृष्ठ १०१, चतुर्थप्रश्न प्रथम अध्याय) *

भावार्थ—यदि किसी कन्याको कोई ज़बरदस्ती ले जाय और मंत्रोंसे उसका संस्कार न हुआ हो, तो विधिके अनुसार उसका दूसरा ब्याह कर दे । क्योंकि जैसी कन्या वैसी वह । १५ ॥

जिसका विवाहसंस्कार हो गया हो और पति मर जावे तथा वह अक्षतयोनि हो, चाहे आई गई भी हो, तो भी पुनर्विवाहकी विधिसे उसका संस्कार होना चाहिए ॥ १६ ॥

महाभारत हिन्दुओंका एक माननीय धर्मग्रन्थ है । उसमें भीष्मपर्वके अध्याय ९१ में सुप्रसिद्ध धनुर्धारी अर्जुनके पुनर्विवाहका वर्णन है—

अर्जुनस्यात्मजः श्रीमानिरावान्नाम वीर्य्यवान् ।
सुतायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता ॥ ७ ॥
ऐरावतेन सा दत्ता ह्यनपत्या महात्मना ।
पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना ॥ ८ ॥

---

* Edited by E. Huultzsch, Ph. D. Vienna printed at Leipzig 1884.

भावार्थ—नागराजकी कन्यासे अर्जुनको एक बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम इरावान था ॥ ७ ॥ जब सुपर्ण ऐरावतने उस नागराजकी कन्याके पतिको मार डाला, तब बुद्धिमान नागराजने अपनी दुखिया कन्याका विवाह अर्जुनके साथ कर दिया ॥ ८ ॥

हिन्दुओंके वेदोंद्वारा भी विधवा-विवाहका समर्थन होता है—

> " **इयं नारी पतिलोकं वृणाना**
> **निपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम् ।**
> **धर्मं पुराणमनुपालयन्ती**
> **तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥"**

(अथर्ववेद; काण्ड १८ सूक्त ३, मन्त्र १)

(इयं) यह (नारी) स्त्री (पतिलोकं) पतिके लोकको (वृणाना) चाहती हुई (प्रेतम्) मरे हुए पतिके (अनु) पीछे (मर्त्य) हे मनुष्य (उपत्वा) तेरे पास (निपद्यते) आती है (पुराणं) पुराने या सनातन (धर्मं) धर्मको (पालयन्ती) पालती हुई (तस्यै) उसके लिए (इह) इस लोक या स्थानमें (प्रजां) सन्तानको (द्रविणं) च और धनको (धेहि) धारण करा ।

सायण भाष्य—हे (मर्त्य) मनुष्य! या (नारी) मृतस्य तव भार्य्या सा (पतिलोकम्) (वृणाना) कामायमाना (प्रेतं, मृतं, त्वां, उपनिपद्यते) समीपे नितरां प्राप्नोति । कीदृशी, (पुराणं, धर्मं) अनादिकाल-प्रवृत्तं कृत्स्नं स्त्रीधर्मं (अनुपालयन्ती) अनुक्रमेण पालयन्ती (तस्यै) धर्मपत्न्यै त्व इह लोके निवासार्थं अनुज्ञां दत्त्वा (प्रजाम्) पुत्रादिकं (द्रविणम्) धनञ्च (धेहि) सम्पादय ।

भावार्थ—हे मनुष्य, यह जो मरे पतिकी स्त्री तेरी भार्या है, वह पतिलोक या पतिगृहकी कामना करती हुई मरे पतिके उपरान्त तुझको

प्राप्त हुई है। कैसी है वह? अनादि कालसे स्त्रीधर्मको पालती हुई। उस धर्मपत्नीके लिए तू इस लोकमें निवासकी आज्ञा देकर पुत्रादि सन्तान और धनकी प्राप्ति करो।

"उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं
गतासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं
पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ॥"

—अथर्ववेद; का० १८ सूक्त ३, मन्त्र २ तथा
—ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त १८, मन्त्र ८

सायणभाष्य—हे (नारि) मृतस्य पत्नी (जीवलोकं) जीवानां पुत्र-पौत्राणां स्थानं लोकं गृहमभिलक्ष्य (उदीर्ष्व) अस्मात् स्थानात् उत्तिष्ठ (गतासुम्) अपक्रान्तप्राणां (एतं) पतिं (उपशेषे) तस्य समीपे स्वपिषि तस्मात् त्वं (एहि) आगच्छ। यस्मात् त्वं (हस्तग्राभस्य) पाणिग्राहं कुर्वतः (दधिषोः) गर्भस्य निधातुः (तव) अस्य (पत्युः) सम्बन्धादागतं (इदं) (जनित्वम्) जायात्वं अभिलक्ष्ये (सम्बभूथ) सम्भूतासि अनुसरणं निश्चयं अकार्षीः अस्मादागच्छ।

भावार्थ—हे मरे हुए पतिकी पत्नी, जीवित लड़कों पोतोंका लोक अर्थात् जो गृह है उसको विचार करके इस जगहसे उठ। प्राणान्त हुए पतिके समीप तू सोती है वहाँसे आ। जिससे तू पाणिग्रहण करनेवाला गर्भको धारण करानेवाला इस पतिके सम्बन्धसे आया हुआ जो है इसकी स्त्री होनेके विचारसे निश्चय करके तू अनुसरण कर—इस लिए आ।

तैत्तिरीय आरण्यक अ० ६,१,१४ में भी यही मंत्र है। इसका भाष्य सायणाचार्यने इस तरह किया है:—

हे (नारि) त्वं (गतासुम्) गतप्राणं (एतम्) पतिं (उपशेषे) उपेत्य शयनं करोषि (उदीर्ष्व) अस्मात्पतिसमीपादुत्तिष्ठ (जीव-

लोकमभि) जीवन्तं प्राणसमूहमभिलक्ष्य (एहि) आगच्छ । (त्वम्), (हस्तग्राभस्य) पाणिग्राहवतः (दधिषोः) पुनर्विवाहेच्छोः (पत्युः) एतत् (जनित्वम्) जायात्वं (अभिसम्बभूव) अभिमुख्येन सम्यक् प्राप्नुहि ।

भावार्थः—हे नारी, तू इस मृत पतिके पास लेटी है । इस पतिके पाससे उठ । जीवित पुरुषोंको विचार कर आ और तू हाथ पकड़नेवाले पुनर्विवाहकी इच्छा करनेवाले इस पतिको जायाभाव (स्त्रीभाव)से अच्छी तरहसे प्राप्त हो ।

या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दते परम् ।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वियोषतः ॥

(—अथर्ववेद, काण्ड, ९, अनुवाक ३, सूक्त ५, मन्त्र २७)

अर्थ—(या) जो स्त्री (पूर्वं) पहले (पति) पतिको (वित्त्वा) पाकर (अथ) उसके पीछे (अन्यम्) अन्य (अपरम्) दूसरेको (विन्दते) प्राप्त होती है (तौ) वे दोनों (पञ्चौदनं) पाँच भूतोंको सींचनेवाले (अजं) ईश्वरको (ददातः) अर्पण होते हुए (न) न (वियोषतः) अलग हों ।

इस मंत्रमें स्पष्ट बतलाया गया है कि यदि एक पतिके उपरान्त दूसरा पति ग्रहण किया जाय, तो वह एक दूसरेसे अलग न हों किन्तु ईश्वरका नाम लेते हुए प्रेमसे बर्ताव करें ।

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणा ज्योतिषं ददाति ॥

—अथर्ववेद, काण्ड ९, सूक्त ५, मन्त्र २८

अर्थ—(समानलोकः) बराबर स्थान या पदवाला (भवति) होता है (पुनर्भुवा) पुनर्भू अर्थात् उस स्त्रीके साथ जिसका पुनर्विवाह हुआ है (अपरः) दूसरा (पति) पति जो (पञ्चौदनं अजं) पाँच

भूतोंके सींचनेवाले परमात्माको (दक्षिणा ज्योतिषम्) दानक्रिया है ज्योति जिसकी ऐसेको (ददाति) अर्पण करता है।

यहाँ बतलाया गया है कि जो पुरुष विधवासे पुनर्विवाह करता है, उसका पद किसी प्रकार अन्य पुरुषोंसे कम नहीं समझा जाता, क्यों कि पुनर्विवाह कोई घृणित कार्य नहीं है।

अन्य प्रमाण।

[१]

सम्राट् चन्द्रगुप्त सन् ईस्वीसे ३२१ वर्ष पूर्व हुए हैं। ये जैनमतानुयायी थे। यह बात मैसूरके शिलालेखोंसे सिद्ध होती है। कौटिल्य जिनका दूसरा नाम चाणक्य भी है, महाराजके मंत्री और प्रसिद्ध नीतिशास्त्रविशारद थे। इन्हीं कौटिल्यरचित अर्थशास्त्रसे ज्ञात होता है कि सम्राट् चन्द्रगुप्तके राजत्वकालमें ब्राह्मणादि उच्चवर्णोंमें भी विधवाविवाहका प्रचार था। कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्रके तीसरे अधिकरणके दूसरे अध्यायमें लिखा है—

मृते भर्तरि धर्मकामा तदानीमेवास्थाप्याभरणं शुल्क शेषं च लभेत। लब्ध्वा वा विन्दमाना सवृद्धिकमुभयं दाप्येत।

अर्थात् पतिके मर जानेपर धर्मपूर्वक रहनेकी इच्छा रखनेवाली स्त्री अपना गहना तथा सगाईका धन ले सकती है। यदि वह दूसरा विवाह करना चाहे तो विवाहके समय श्वसुर तथा पतिका दिया हुआ धन व्याजसहित वापस करे।

[२]

इसी पुस्तकमें और भी लिखा है—

ह्रस्वप्रवासिनां शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां भार्याः संवत्सरोत्तरं कालमाकांक्षेरन्न प्रजाताः संवत्सराधिकं प्रजाताः। प्रतिविहिता द्विगुणं

कालम्। अप्रतिविहिताः सुखावस्था बिभृयुः परं चत्वारिवर्षाण्यष्टौ वा ज्ञातयः। ततो यथादत्तमादाय प्रमुञ्चेयुः। ब्राह्मणमधीयानं दश-वर्षाण्यप्रजाता द्वादश प्रजाता राजपुरुषमायुःक्षयादाकाङ्क्षेत।... कुटुम्बर्द्धिलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थम्। आपद्गता वा धर्मविवाहात्कुमारी परिगृहीतारमनाख्याय प्रोषितं श्रूय-माणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत। संवत्सरं श्रूणमाणमाख्याय।...ततः परं धर्मस्थैर्विसृष्टा यथेष्टं विन्देत।...दीर्घप्रवासिनः प्रव्रजितस्य प्रेतस्य वा भार्या सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत। संवत्सरं प्रजाता। ततः पतिसोद-र्यं गच्छेत्। बहुषु प्रत्यासन्नं धार्मिकं भर्मसमर्थं कनिष्ठमभार्यं वा। तदभावेऽप्यसोदर्यं सपिण्डं कुल्यं वासन्नम्।

अर्थात् यदि शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण जातिके कुछ मनुष्य थोड़े समयके लिए बाहर गए हों, तो उनकी स्त्रियाँ कमसे कम साल तक, यदि उनके बच्चे हों तो अधिक समय तक, यदि मालिक खाने पीनेका प्रबंध कर गया हो तो दुगने समयतक, उसके आनेकी प्रतीक्षा करें। जिनके खाने पीनेका प्रबन्ध न हो, उन्हें उनके धन धान्यसे समृद्ध भाई बन्धु चार वर्ष या अधिकसे अधिक आठसाल तक सहारा दें, इसके बाद वे विवाहकालीन धन लौटा कर दूसरेके साथ विवाह कर सकती हैं।

यदि ब्राह्मण कहीं बाहर पढ़ने गये हों, तो उनकी पुत्ररहित स्त्रियाँ १० साल तक, और बच्चेवालीं बारह साल तक प्रतीक्षा करें। यदि कोई व्यक्ति राजाके कामके लिए बाहर गये हों, तो उनकी स्त्रियाँ जीवनपर्यंत प्रतीक्षा करें।....यदि किसीके पास खाने पीनेको रुपया न हो और उसके धनी सम्बन्धी उसे छोड़ बैठे हों, तो वह दूसरा विवाह कर ले। सगाई हो जानेके बाद यदि किसी कुँवारी लड़कीका भावी पति बिना कहे विदेश चला गया हो और उसके पास खाने पीने लायक धन न हो, तो वह सात मासिक धर्म तक और यदि वह कहकर गया हो तो एक साल तक प्रतीक्षा करे। इसके बाद धर्मस्थसे आज्ञा लेकर दूसरा विवाह कर ले।

दीर्घकालसे जो प्रवास कर रहे हों, जिन्होंने वैराग्य धारण कर लिया हो, जो मर गया हो, उनकी स्त्रियाँ सात मासिकधर्म तक और यदि उनके बच्चा हो तो सालभर तक प्रतीक्षा करें। इसके पश्चात् छोटे भाईके पास बैठ जावें। यदि बहुतसे छोटे भाई हों, तो ऐसी दशामें जो सबसे छोटा, जवान, धार्मिक, स्त्रीरहित तथा नजदीकी रिश्तेदार या प्रतिदिन समीप रहता हो, उसके साथ रहें। यदि वह भी न हो तो किसी समानगोत्रके सम्बन्धीके पास चली जावें। सारांश यह कि जो सबसे अधिक नजदीकका मिले, उसके पास वह बैठें।

(—कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रकरण ५९)

विधवा-विवाहके विषयमें विख्यात भारतीय पंडितों और विद्वानोंकी सम्मतियाँ।

(१) पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

" कितने आश्चर्यका स्थान है कि आप अपने शास्त्रोंकी आज्ञा नहीं मानते और शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार विधवाओंका पुनर्विवाह करके उन्हें भयंकर दुःखोंसे छुटकारा नहीं दिलाते हैं। उनका पुनर्विवाह करनेसे आप अनेक पापों, दुःखों और अधर्मोंसे बच जायँगे।"

विद्यासागरजी बंगालके बड़े भारी नेता थे। ये सन् १८२० से १८९१ तक रहे हैं। आपहीने प्रबल आन्दोलन करके सरकार द्वारा सन् १८५६ ई० में विधवा-विवाह कानून—जो आगे दिया गया है—बनवाया था। इन्होंने केवल कानून ही नहीं बनवाया था; बल्कि विधवा-विवाहको व्यावहारिक रूप देनेके लिए अपने पुत्र नारायणका एक विधवाके साथ विवाह किया था। इस विवाहके सम्बन्धमें उन्होंने अपने

छोटे भाई शंभुनाथ विद्यारत्नको जो पत्र लिखा था, उसके कुछ वाक्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

"नारायणने अपनी इच्छासे यह विवाह किया है। मैं विधवा-विवाहका प्रवर्तक हूँ। हम लोगोंने उद्योग करके अनेक विधवाओंके ब्याह कराए हैं। विधवा-विवाह जारी करना मेरे जीवनका सबसे बड़ा सत्कार्य है। मैं देशाचारका गुलाम नहीं हूँ—अपने या समाजके कल्याणके लिए जो उचित या आवश्यक जान पड़ेगा, वह करूँगा।"

पंडित ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर अपने एक भाषणमें कहते हैं—"देशनिवासियो, आप धोखे और निद्रामें कबतक पड़े रहोगे? एक बार तो अपने नेत्र खोलो और देखो कि हमारी ऋषियों और पूर्वजोंकी वही धर्मप्राण भारतभूमि जो एक समय संसारके सर्वोच्च आसनपर विराजमान थी, आज व्यभिचारकी प्रबल धारामें बही चली जा रही है। भयंकर और गहरे गढ़ेमें आप गिरे हुए है। अपने वेद और शास्त्रोंकी शिक्षापर दृष्टि फेरिए और उनकी आज्ञाओंपर चलिए, तब आप अपने देशकी कलंक कालिमाको धो सकेंगे। परन्तु अभाग्यवश सैकड़ों वर्षोंके पक्षपातसे आप ऐसे प्रभावित हो गए हैं कि मुझे भय है कि आप शीघ्र ही अपनी मर्यादापर आकर शुद्धता और ईमानदारीके मार्गपर नहीं आ सकेंगे। आपकी आदतोंने आपकी बुद्धिपर ऐसा परदा डाल दिया है कि आपको अपनी विधवा बहनोंपर दयाका भाव लाना कठिन हो गया है।

"जब कामशक्तिके प्रबल आक्रमणके कारण वे वैधव्यके नियमोंका उल्लंघन कर देती हैं, उस समय आप उनके व्यभिचारसे आँख मूँद लेते हैं। उस समय उनका उचित प्रबन्ध न कर और अपनी मान मर्यादा

खोकर उन्हें व्यभिचार करने देते हैं। किन्तु कितने आश्चर्यका स्थान है कि आप अपने शास्त्रोंकी आज्ञानुसार उनका पुनर्विवाह करके उन्हें भयंकर दुःखोंसे छुटकारा नहीं दिलाते हैं। उनका पुनर्विवाह करनेसे आप भी अनेक पापों, दुःखों और अधर्मोंसे बच जायँगे। आप स्वभावतः यह ख्याल करते हैं कि पतिके मर जानेके बाद स्त्रियाँ मनुष्यता तथा प्रकृतिके प्रभावोंसे सर्वथा शून्य हो जाती हैं और उनको कामेच्छा नहीं सताती है; परंतु व्यभिचारके नित्य नये उदाहरणोंसे आपका विश्वास सर्वथा ग़लत सिद्ध हो जाता है। खेद है कि आप जीवनके वृक्षोंको ज़हरके पानीसे सींच रहे हैं। यह कैसा शोकका स्थान है! जिस देशके मनुष्योंका हृदय दया और तरससे शून्य है, जिन्हें अपने भले बुरेका ज्ञान नहीं है और जहाँके मनुष्य साधारण शिक्षा देना ही अपना बड़ा भारी कर्तव्य और धर्म समझते हैं, उस देशमें स्त्रियाँ उत्पन्न ही न हों तो अच्छा हो।"

(२) जष्टिस सर गुरुदास बनर्जी।

"पंडित विद्यासागरने—जिनका नाम वैधव्यको उठा देनेमें सदा अमर रहेगा—अपनी पुस्तकमें सिद्ध किया है कि विधवाओंका पुनर्विवाह शास्त्रानुसार वैध है। उक्त पंडितकी इस सम्मतिको देशका अधिकांश शिक्षितवर्ग स्वीकार करता है।"

(३) बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी।

"पुरुष पत्नीवियोगके बाद फिर विवाह करनेका अधिकारी है, तो साम्यनीतिके अनुसार स्त्री भी पतिवियोगके बाद पुनर्विवाह करनेकी अधिकारिणी है। यहाँपर यह प्रश्न हो सकता है कि जब पुरुष पुनर्विवाहका अधिकारी है, तभी तो स्त्री भी अधिकारिणी है, तो क्या पुरुषोंका पुन-

विवाह करना उचित है? उचित है या अनुचित, हम इस विवादमें पड़ना नहीं चाहते। हमारी सम्मतिमें मनुष्यमात्रको यह अधिकार है कि जिसमें दूसरेका अनिष्ट न हो ऐसे प्रत्येक कार्यको वह प्रवृत्तिके अनुसार कर सकता है। अतएव स्त्री-वियोगी पति अथवा पति-वियोगिनी पत्नी दोनों ही इच्छा होनेपर पुनर्विवाहके अधिकारी हैं।"

(४) सर रमेशचन्द्र दत्त।

"प्राचीन ग्रन्थोंमें ऐसे बहुतसे प्रमाण मिलते हैं जिनमें पौराणिक-कालमें विधवा-विवाहका प्रचलित होना सिद्ध होता है। विष्णु कहते हैं कि "जिस स्त्रीका दूसरी बार विवाह होता है वह पुनर्भू कहलाती है।" याज्ञवल्क्य कहते हैं कि "क्षता और अक्षता दोनोंका पुन:संस्कार होना चाहिए और पराशर जो आधुनिक समयके स्मृतिकार हैं ऐसी स्त्रीके पुनर्विवाहकी आज्ञा देते हैं जिसका पति मर गया हो या जातिबाहर हो या योगी हो गया हो।"

(५) जष्टिस सर नारायण गणेश चन्दावरकर।

"समाजका स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिए विधवा-विवाहकी बड़ी आवश्यकता है। उन बालविधवाओंको जिनका पूर्वपति अल्पवयमें ही मर गया हो और जो सुहागिनी और विधवाके अर्थको भी न जानती हों, उनको एक महा निष्ठुर और अप्राकृतिक देशाचारके कारण जीवनपर्यंत वैधव्य पालनके लिए बाध्य करना कदापि उचित नहीं है।"

(६) पं० राधाचरण गोस्वामी।

"मैं वैष्णव सम्प्रदायका एक आचार्य हूँ। विवाह आदि संस्कार वैष्णव धर्मसे कुछ सम्बध नहीं रखते। ये स्मार्ताचार हैं। इनके विषयमें विचार करनेसे वैष्णव धर्मका कुछ अपमान नहीं होता। यदि इसपर विचार

करनेसे हमारे स्मार्ताचारानुयायी भाई कुछ रुष्ट हों, तो उनसे निवेदन है कि मैं विधवाविवाहको शास्त्रोक्त समझता हूँ और इसीसे उसका समर्थन करता हूँ।"

(७) प्रोफेसर मैक्समूलर।

"मैंने जहाँ तक वेदोंका अध्ययन किया है मुझे कोई ऐसा मंत्र नहीं देख पड़ा जिसमें बालविवाहकी आज्ञा हो और विधवाविवाहका निषेध किया गया हो।"

(८) विश्ववंद्य महात्मा गाँधी।

"मैं नहीं खयाल करता हूँ कि १५ वर्षकी लड़की विधवा हो जावे। मैं उस लड़कीको विवाहित ही नहीं समझ सकता हूँ जो माता पिता-ओंके द्वारा बिना उसकी मरजीके मात्र पैसेके लोभसे या अन्य कारणसे विवाही गई हो। यदि ऐसी कोई लड़की विधवा हो जावे, तो मैं खयाल करता हूँ कि माता पिताका कर्तव्य है कि वे उसका पुनर्विवाह कर दें। और विधवाओंके सम्बन्धमें यह है कि यदि वे खयाल करती हैं कि वे पवित्र वैधव्यका जीवन नहीं बिता सकतीं, तो उनको पुनर्विवाह करनेका उतना ही हक़ है जितना हक़ विधुरोंको है।"

(यंगइंडिया, ता० १८ अगस्त १९२७)

(९) स्वर्गीय लाला लाजपतराय।

"मैं विधवा-विवाहका कट्टर पक्षपाती हूँ।"

(१०) डॉ० तेजबहादुर सप्रू।

"मैं बहुत जोरोंसे विधवा-विवाहके पक्षमें हूँ। विधवाओंका पुन-र्विवाह अवश्य—अवश्य होना चाहिए। ऐसा न करना, मैं मनुष्यताके बाहर समझता हूँ।"

(११) अभ्युदयसम्पादक पंडित कृष्णकान्त मालवीय ।

" विधवाओंका पुनर्विवाह करना मैं उचित समझता हूँ । जो विधवाएँ विवाह करना चाहें, उनके मार्गमें अड़चन न होनी चाहिए ।"

(१२) सेठ पद्मराज जैन रानीवाले, कलकत्ता ।

" मैं समाजकी वर्तमान अवस्थामें समाजकी रक्षाके लिए विधवा-विवाहको अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य और उद्देश्य समझता हूँ । हिन्दू जातिकी विधवाओंकी इन मनोवृत्तियोंके दबानेके प्रयत्नसे आज हजारों विधवाओंको इस पवित्र धर्मको छोड़कर दूसरे धर्मोंकी शरण लेनी पड़ती है । आजसे कुछ वर्ष पहले कलकत्तेमें मारवाड़ी वेश्याओंका नामोनिशान भी नहीं था; परंतु आज उनकी संख्या सैकड़ोंकी है । गुप्त व्यभिचार और गृहस्थ वेश्याओंकी बात तो अलग ही छोड़ दीजिए । "

(जातिप्रबोधक, अंक ९, सन् १९२७)

(१३) बाबू पंचमलालजी जैन रिटायर्ड तहसीलदार, जबलपुर ।

" जो वैधव्यदीक्षा पालनेमें असमर्थ हैं, वे कौनसे पथका अवलम्बन करें ? क्या हमारा आपका मनुष्यताके नाते यह कर्तव्य नहीं है कि हम वास्तविक कठिनाईको स्वीकार करें ? विवाह वह है जिससे स्त्री-पुरुषका संभोग सम्बन्ध जुड़ता है । वह जब गुप्त किया जाता है तब उसकी व्यभिचार संज्ञा होती है और जब वह प्रकट धर्म और पञ्चोंकी साक्षीसे किया जाता है, तब वही विवाह कहा जाता है । "

(व्याख्यान, सभापति-परवारसभा बीना, दिसम्बर १९२७)

(१४) श्रीयुक्त अण्णापा बाबाजी लट्ठे जैन एम. ए. एलएल. बी. दीवान राज्य कोल्हापुर ।

" जिस विधवाको ब्रह्मचर्यका सम्पूर्ण पालन शक्य तथा प्रिय मालूम होता हो उसे अपना ध्येय अवश्य पालना योग्य है, परन्तु जो ऐसा नहीं

कर सकती हैं वे विधवाएँ यदि पुनर्विवाह करें, तो हरकत नहीं है। इसके सिवा वर्तमानमें जैसी जैन समाजकी स्थिति है, उसको देखते हुए ऐसा करना जरूरी है।"

विधवा-विवाहपर कुछ आक्षेप।

('सत्यवादी' चैत्र सुदी ८, सं० १७८४)

(१) कुछ लोग कहते हैं कि विवाहमें माता पिता कन्याको दान करते हैं। जब वह दान की जा चुकी, तब पतिकी सम्पत्ति हो चुकी—पतिके मरनेके पीछे उसको न स्वयं अधिकार है और न माता पिताको अधिकार है कि वे उसका पुनर्विवाह करें। इसका समाधान यह है कि कन्या, रुपया-पैसा या कपड़ेके समान ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो दान की जा सके। जो वस्तु दान की जाती है, उसे पानेवाला भी दूसरोंको दे सकता है। यदि दान ही करना हो, तो फिर विवाह करने, वर-कन्याके हाथ मिलाने, पाणिग्रहण करने या भाँवरें पाड़नेकी ज़रूरत नहीं है। कन्या संकल्प मात्र करके दे दी जाया करे। परन्तु ऐसा नहीं होता है। कन्याको वरके साथ विवाहते हैं, इसीका नाम कन्यादान है। कन्यादानका अर्थ कन्याका देना, अर्थात् किसी योग्य पुरुषके साथ विवाह करना है। स्वयंवरमें कन्या स्वयं वरको पसंद करती है, उसका केवल विवाह-संस्कार ही माता-पिताद्वारा होता है। यदि कन्यादान कोई दान होता, तो वह ब्राह्मणों साधुओं या भिखारियोंको भी दे दिया जाता। परंतु जिसे लोग कन्यादान कहते हैं, वह वास्तवमें विवाह है, जो योग्य वर ढूँढ़कर किया जाता है। बहुतसे स्थानोंपर कन्याएँ स्वयं भी विवाह कर लेती हैं। जब पति मर जाता है, तब वे पतिके स्वामित्वसे छूटकर अनाथ हो जाती हैं और उस समय उन्हें वही

अधिकार प्राप्त हो जाता है, जो अधिकार एक विधुरको होता है। अर्थात् यदि शक्ति हो तो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य पालें और जो शक्ति न हो तो प्रकट रीतिसे दूसरा विवाह करके संतोषसे रहें और व्यभिचार तथा गुप्त पापसे बचें। यदि विधवा नाबालिग हो, तो मातापिताको पुनः उसका विवाह कर देना चाहिए, क्योंकि उन्होंने ही भूलसे बचपनमें उसकी शादी कर दी थी, जिससे वह बाल-विधवा हो गई। यदि विधवा बालिग हो, तो वह कानूनसे स्वयं वर ढूँढ़नेकी अधिकार रखती है और अपना पुनर्विवाह कर सकती है।

(२) कुछ लोग यह आक्षेप करते हैं कि जैन शास्त्रोंमें कन्याविवाहका तो वर्णन आता है, पर विधवा-विवाहका नहीं आता, इससे विधवा विवाह शास्त्रोक्त नहीं है। इसका समाधान यह है कि पतिरहित स्त्रीको वास्तवमें कन्या ही कहते हैं। जो विवाहके योग्य हो, वही कन्या है। जिसके चारित्रमोहनीयका तीव्र उदय हो, वही विवाहनेके योग्य है; जैसा कि अकलंकस्वामीने राजवार्तिकमें कहा है। अविवाहिता कन्या तथा विधवामें एकसे ही भाव और एकसी ही शरीरकी शक्ति पाई जाती है, इस लिए यदि वह चारित्रमोहरूप कामभावको रोकनेमें असमर्थ है, तो वह भी कन्याके समान विवाह कर सकती है।

इसके सिवा कन्या शब्दका अर्थ केवल कुँवारी कन्या नहीं है। कन्या साधारण स्त्रीको भी कहते हैं। श्री. वामन शिवराम आपटे अपने संस्कृत-अंग्रेजी कोशमें ‘ कन्या ’ शब्दके कई अर्थ देते हैं:—

(१) An unmarried girl or daughter. एक अविवाहिता लड़की या पुत्री।

(२) A girl ten years old, दस वर्षकी अवस्थावाली लड़की।

(३) A virgin, maiden अक्षतयोनि या अविवाहिता ।

(४) A woman in general. एक साधारण स्त्री ।

साधारण स्त्रीके अर्थमें कन्या शब्द मनुस्मृति अ० १० के ११ वें श्लोकमें भी आया है—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ।

इसपर कुल्लूक भट्ट लिखते हैं—

अत्र विवाहासंभवात्कन्याग्रहणं स्त्रीमात्रप्रदर्शनार्थम् ॥

अर्थात्, यहाँ विवाह असंभव होनेके कारण कन्याशब्द 'स्त्रीमात्र'के लिए आया है ।

गणरत्नमहोदधिमें वर्धमान कवि कहते हैं—

कनति शोभते वपुषा कन्या ।

अर्थात् शरीरसे शोभायमान होनेसे कन्या कहलाती है । 'कन्या" शब्द विवाहित लड़कीके लिए भी आता है । यथा—

ब्राह्मणाद् वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ।

—मनुस्मृति अ० १०, श्लोक ८ ।

इसे कुल्लूक भट्ट और स्पष्ट करते हैं—

कन्याग्रहणादत्रोढायामित्यध्याहार्यम् ।

कन्याशब्दसे यहाँ विवाहिता स्त्री समझनी चाहिए ।

नीचेके श्लोकमें कन्या शब्द स्त्रीके लिए आया है—

अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा
पञ्चकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

यहाँ ये पाँचों स्त्रियाँ विवाहिता तथा क्षतयोनि थीं, तो भी इनके लिए कन्याशब्द प्रयुक्त हुआ है ।" (विधवा-विवाह-मीमांसा १० वाँ अध्याय)

श्री श्रीधरसेन नामक जैनाचार्यकृत विश्वलोचन कोशमें भी कन्या शब्द स्त्रीमात्रके लिए कहा गया है—

"कन्या कुमारिका नार्यौं राशिभेदोषधीभिदोः"

देवोंकी स्त्रियोंको देवी या देवकन्या कहा गया है।

(जातिप्रबोधक, सव्यसाचीका लेख, जून सन् १९२८)

(३) कुछ लोग विधवा-विवाहको चोरी या व्यभिचार कहते हैं—उनका ऐसा कहना सर्वथा दोषयुक्त है। जो काम भयसे, छिपकर या गुप्तभावसे किया जाता है, वह चोरी या व्यभिचार हो सकता है, परन्तु जहाँ प्रकट रीतिसे विवाह किया जावे, वह सर्वथा नीतिका काम है, उसके लिए कोई भी राजा चोरी या व्यभिचारकी सजा नहीं दे सकता है।

(४) कोई कोई कहते हैं कि जब कन्याका विवाह होता है, तब वह पतिके साथ पतिव्रता रहनेकी प्रतिज्ञा करती है; परन्तु पुनर्विवाह करनेसे उसकी इस प्रतिज्ञाका खंडन होता है, अतएव विधवा-विवाह निषिद्ध है। इसका समाधान यह है कि विवाहके समय ऐसी प्रतिज्ञा की जाती है कि मैं जीवनपर्यंत पतिकी सेवा करूँगी, किसी परपुरुषकी चाह न करूँगी। जब पति नहीं है, तब वह किसकी सेवा करे?

(५) पुरुष बहुविवाह कर सकता है, पर स्त्री नहीं कर सकती, इस लिए उसे विधवा होनेपर भी पुनर्विवाहका अधिकार नहीं है। यह आक्षेप भी ठीक नहीं है, क्यों कि यह अप्राकृतिक है कि स्त्रीका एक साथ कई पुरुषोंसे सम्बन्ध हो। स्त्री खेतके समान है। उसको एक पुरुष ही वीर्यदानके लिए बस है। अतः बहुपति निरर्थक हैं। पतिके मर जानेपर यदि स्त्रीके शरीरमें पुत्रोत्पत्तिकी शक्ति है और वह ब्रह्मचर्य्यपालनकी इच्छा या सामर्थ्य नहीं रखती है, तो उसको अधिकार है कि वह अपना पुनर्विवाह कर ले। जैसे कि जब एक खेतमें धान्य तैयार होकर काट लिया जाता है, तब उसमें दूसरा बीज बोया जा सकता है।

विधवा-विवाहसम्बन्धी कानून।

यह कानून पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागरके उद्योगसे २५ जुलाई सन् १८५६ ई० को पास हुआ था। इसका नाम "The Hindu Widows' Remarriage Act, 1856" अर्थात् "हिन्दू-विधवाओंके पुनर्विवाहका निश्चय, १८५६" है। इसकी मूल भाषा यह है—

An Act to Remove All Legal Obstacles to the Marriage of Hindu Widows.

Preamble.

Whereas it is known that by the law as administered in the Civil Courts established in the territories in the possession and under the Government of the East India Company, Hindu widows with certain exceptions are held to be, by reason of their having been once married, incapable of contracting a second valid marriage and the offspring of such widows by any second marriage are held to be illegitimate and incapable of inheriting property, and whereas many Hindus believe that this imputed legal incapacity, although it is in accordance with established custom, is not in accordance with a true interpretation of the precepts of their religion, and desire that the civil law administered by the Courts of Justice shall no longer prevent those Hindus who may be so minded, from adopting a different custom, in accordance with the dictates of their own conscience; and whereas it is just to relieve all such Hindus from this legal incapacity of which they complain, and the removal of all legal obstacles, to the marriage of Hindu widows will tend to the promotion of good morals, and to the public welfare, it is enacted as follows :—

1. No marriage contracted between Hindus (*a*) shall be invalid, and the issue (*b*) of no such marriage

---

Case law :—

(*a*) Act applies only to Hindu widows' remarriage as such 19c. 289; enables widows unable to remarry previously, to remarry, 11A.330; and does not apply to cases in which remarriage is allowed by custom of caste, 11B.119; (*b*) Of a marriage under the Act can inherit, 4 P. R. 1905; 61 P. R. 1905;

Marriage of Hindu Widows Legalized.

shall be illegitimate, by reason of the woman having been previously married or betrothed to another person who was dead at the time of such marriage, any custom and any interpretation of Hindu Law to the contrary not withstanding.

Rights of Widow in Deceased Husband's Property to Cease on Her Remarriage.

2. (*a*) All rights and interests which any widow (*b*) may have in her deceased husband's property by way of maintenance, or by inheritance to her husband or to his lineal successors, or by virtue of any will or testamentary disposition conferring upon her without express permission to remarry, only a limited interest in such property, with no power of alienating the same, shall upon her remarriage cease and determine as if she has then died; and the next heirs of her dceeased husband, or other persons entitled to the property on her death, shall thereupon succeed to the same.

Guardianship of Children of Deceased Husband on the Remarriage of His Widow

3. On the remarriage of a Hindu widow, if neither the widow nor any other person has been expressly constituted by the will or testamentary disposition of the deceased husband the guardian of his children, the father or paternal grandfather or the mother or paternal grandmother of the deceased husband, may petition the highest Court having original jurisdicition in civil cases in the place where the deceas-

---

(*a*) S.2 divests her of the right only if she marries after succeeding to the estate, 26 B. 388=4 Bom. L. R. 73; 29B. 91. F.B.=6 Bomb. L. R. 779; transfer by a Hindu—for legal necessity before her remarriage a valid, 8 C. L., J. 542; (*b*) Section applies only to widows who could not have remarried prior to the Act, 11A. 930; a—of a caste in which remarriage is allowed, *e. g.*, the Kurmi, can remain in possession of her husband's estate till her death, 20A. 476; see also 29A. 122; She does not lose her right to maintenance against her husband's estate, 31A. 161; She forfeits estate inherited, 22C.589; from her son, 22B. 321 (F.B.)

ed husband was domiciled at the time of his death for the appointment of some proper person to be guardian of the said children, and thereupon it shall be lawful for the said court, if it shall think fit, to appoint such guardian, who when appointed, shall be entitled to have the care and custody of the said children, or of any of them during their minority, in the place of their mother, and in making such appointment the court shall be guided, so far as may be by the laws and rules in force, touching the guardianship of children (*a*) who have neither father nor mother.

Provided that when the said children have not property of their own, sufficient for their support and proper education whilst minors, no such appointment shall be made otherwise than with the consent of the mother (*b*) unless the proposed guardian shall have given security for the support and proper education of the children whilst minors.

Nothing in This Act to Render Any Childless Widow Capable of Inheriting.

4. Nothing in this Act contained shall be construed to render any widow, who at the time of the death of any person leaving any property is a childless widow, capable of inheriting the whole or any share of such property if before the passing of this Act, she would have been incapable of inheriting the same by reason of her being a childless widow.

Saving of Rights of Widow Marrying Except as Provided in Sections 2 and 4,

5. Except as in the three preceding sections is provided a widow shall not, by reason of her remarriage forfeit (*c*) any property or any right to which she would otherwise be entitled, and every widow who has remarried shall have the same rights of inheritance as she would have had, had such marriage been her first marriage.

Case law—

(*a*) Meaning of...4A 195; (*b*) Who has no right to give her son in adoption, 24B.89; (*c*) Remarriage does not prevent such a widow from inheriting her son's property, 2B.L.R.A.C.189—11W.R.82; a remarried Marwari can not claim her first husband's property, 1,M226; right to give in adoption is not a right reserved under the section, 24B89 contra ; 33B.107—11 Bom. L.R. 11 34.

6. Whatever words spoken, ceremonies performed or engagements made on the marriage of a Hindu female who has not been previously married, are sufficient to constitute a valid marriage, shall have the same effect if spoken, performed or made on the marriage of a Hindu widow, and no marriage shall be declared invalid on the ground that such words, ceremonies or engagements are inapplicable to the case of a widow.

Ceremonies Constituting Valid Marriage to Have Same Effect on Widows' Marriage.

7. If the widow remarrying is a minor whose marriage has not been consummated, she shall not remarry without the consent of her father, or if she has no father, of her paternal grandfather, or if she has no such grandfather, of her mother, or failing also brothers, of her next male relative.

Consent to Re-Marriage of Minor Widows.

8. All persons knowingly abetting a marriage made contrary to the provisions of this section shall be liable to imprisonment for any term not exceeding one year or to fine or to both.

Punishment for Abetting Marriage Made Contrary to This Section.

And all marriages made contrary to the provisions of this section may be declared void by a court of law; provided that in any question regarding the validity of a, marriage made contrary to the provisions of this section, such consent as aforesaid shall be presumed (a) until the contrary is proved and that no such marriage shall be declared void after it has been consummated.

Effect of Such Marriage Provisons.

In the case of a widow who is of full age, or whose marriage has been consummated, her own consent shall be sufficient consent to constitute her remarriage lawful and valid.

Consent to Re-Marriage of Major Widow.

Case law (a) Section 8A 143.

हिन्दू-विधवा-पुनर्विवाह एक्ट १८५६.

कानून जिससे यह तात्पर्य्य है कि हिन्दू-विधवाके विवाह करनेमें किसी प्रकार कानूनी रोक नहीं।

चूँकि यह बात माॡम है कि, जो देश ईस्ट इण्डिया कम्पनीके स्वत्व और शासनमें हैं उन देशोंकी दीवानी अदालतोंके कानूनके अनुसार थोड़ीसी विधवा स्त्रियोंको छोड़ कर शेष हिन्दू-विधवाएँ एक बार विवाह हो जानेके कारण जायज़ तौर पर दूसरा विवाह नहीं कर सकतीं और जो सन्तान उन विधवाओंके दूसरे विवाहसे उत्पन्न हो वह अनुचित है और सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी नहीं।

और चूँकि बहुतसे हिन्दुओंका विश्वास है कि यह कानूनके अनुसार अनुचित ठहराना, यद्यपि रिवाजके अनुकूल है परन्तु उनके धर्मशास्त्रके वास्तविक अर्थोंके अनुसार नहीं है और वह लोग यह बात चाहते हैं कि यदि भविष्यमें कोई भी हिन्दू लोग दूसरे रिवाजका जारी करना इस रिवाजके विरुद्ध अपने आत्मासे स्वीकार करें तो उसके जारी करनेमें कोई रुकावट दीवानीके कानून द्वारा न हो सके।

और चूँकि यही न्याय है कि उन लोगोंको इस प्रकार कानूनसे नाजायज ठहरानेकी रोकसे छुड़ाया जाय जिसकी उनको शिकायत है और हिन्दू विधवाओंके विवाहके विषयमें सब कानूनी रुकावटोंके उठा देनेसे सदाचार बढ़ेगा और शान्ति फैलेगी।

अतः यह आज्ञा होती है कि—

(१) हिन्दुओंका कोई विवाह नाजायज़ न होगा और इस प्रकारके किसी विवाहकी संतान नाजायज़ न होगी केवल इस लिये कि स्त्रीका पहले

Case law—

(a) Section 8 A. 143.

विवाह हो चुका या मँगनी हो चुकी थी ऐसे पुरुषके साथमें जिसकी इस दूसरे विवाहके पहले मृत्यु हो गई हो, चाहे इस बातके विरुद्ध कोई रिवाज या शास्त्रकी व्यवस्था हो।

(२) सब अधिकार जो किसी विधवाको अपने मृत पतिकी जायदादमें गुज़ारेके लिये, या पतिकी उत्तराधिकारणी होनेके कारण, या पतिके वंशमें कानूनी उत्तराधिकारी होनेके कारण मिलते हों या उसको किसी वसीयतनामेके अनुसार जिसमें पुनर्विवाहकी स्पष्ट आज्ञा न हो, कोई जायदाद मिले जिसको पृथक् करनेका उसको अधिकार न हो, तो विधवाके दूसरे विवाहके समय वह सब जायदाद और अधिकार उसी प्रकार बंद हो जायँगे और जाते रहेंगे कि जैसे वह विधवा मर गई होती और उस विधवाके मृत पतिके निकटस्थ उत्तराधिकारी या वह लोग जो उस विधवाके मरने पर जायदादके उत्तराधिकारी होते उस जायदादको लेंगे।

(३) यदि हिन्दू-विधवाके विवाहके समय उसके मृत पतिने अपने वसीयतनामेके अनुसार स्पष्टतया अपनी विधवाको या किसी अन्य पुरुषको अपनी संतानका वली नियत न किया हो, तो मृत पतिका पिता, पिताका पिता, या माता या पिताकी माता, या मृत पतिके किसी सम्बन्धी पुरुषको इस बातका अधिकार होगा कि वह उस स्थानपर जहाँ मरनेके समय वह मृत व्यक्ति रहता था सबसे ऊँची अदालतमें जिसको दीवानीके असली मुकद्दमें सुननेका अधिकार है, यह अर्जी दे कि उचित पुरुष उस संतानका वली नियत किया जाय और उस अर्जीपर यदि अदालत उचित समझे तो वली नियत कर दे और जब वली नियत हो तो उस वलीको अधिकार होगा कि समस्त सन्तान या उनमेंसे थोड़े बच्चोंका

पालन-पोषण और रक्षण उनकी कम अवस्था होने तक उनकी माताके बजाय रक्खे। और जब अदालत ऐसा वली नियत करे तो उसे जहाँ तक संभव हो सके उन सब कानूनोंकी पैरवी करनी पड़ेगी जो उन बच्चोंके वली नियत करनेके सम्बन्धमें हों और जिनके माता पिता नहीं हैं।

परंतु शर्त यह है कि यदि इन उपर्युक्त बच्चोंके पास अपनी काफी जायदाद न हो जिससे उनकी छोटी अवस्थामें पालन तथा शिक्षण हो सके, तो माताकी इच्छाके बिना कोई वली नियत न किया जाय, सिवाय उस दशाके, जब वली यह जमानत कर दे कि छोटी अवस्थामें मैं इन बच्चोंके पालन पोषण और शिक्षाका भार अपने सिर लूँगा।

(४) इस कानूनकी किसी इबारतसे यह बात न समझी जायगी कि कोई विधवा जो किसी जायदादवाले पुरुषके मरनेके समय सन्तान-रहित है यदि इस कानूनके पास होनेके पूर्व सन्तानरहित होनेके कारण जायदाद पानेकी अधिकारिणी नहीं थी, तो वह अब उस सब जायदाद या उसके किसी भागके पानेकी अधिकारिणी होगी।

(५) सिवाय उन शर्तोंके, जिनका वर्णन इससे पहलेकी तीनों धाराओंमें हो चुका है, कोई विधवा पुनर्विवाह कर लेनेके कारण किसी सम्पत्ति या दायभागसे जिसके पानेकी वह और प्रकारसे अधिकारिणी है अलग नहीं होगी और प्रत्येक विधवाका जिसने पुनर्विवाह किया है उसी प्रकारका स्वत्व सम्पत्तिपर रहेगा मानो यह विवाह उसका पहला ही विवाह था।

(६) जिस हिन्दू स्त्रीका पहले विवाह न हुआ हो उसके विवाहके समयमें जिन शब्दोंके बोलने या जिन रस्मोंके करने या जिन प्रतिज्ञाओंके करनेसे वह विवाह विधि-अनुकूल होता है, हिन्दू विधवा विवाहके समय

उन्हीं शब्दोंके बोलने और उन्हीं रस्मों या प्रतिज्ञाओंके करनेसे उसका पुनर्विवाह विधि अनुकूल ठहरता है और कोई विवाह इस कारणसे नाजायज न ठहराया जायगा कि ऐसे शब्द या रस्में या प्रतिज्ञाएँ विधवाके विषयसे सम्बद्ध नहीं हैं ।

(७) यदि कोई विधवा पुनर्विवाह करना चाहे और वह नाबालिग़ हो और उसके पहले पतिसे संयोग न हुआ हो तो अपने पिता या जो पिता न हो तो पिताके पिता, और जो पिताका पिता न हो तो अपनी माता और जो यह सब न हों तो अपने बड़े भाई और यदि भाई भी न होवें तो अपने दूसरे निकटस्थ सम्बन्धीकी इच्छाके बिना वह विधवा पुनर्विवाह न करेगी ।

(८) और जो लोग जान-बूझकर किसी ऐसे विवाहमें सहायता दें जो इस धाराकी शर्तोंके विरुद्ध है तो वह सब लोग अधिकसे अधिक एक वर्ष तक कैद या जुर्माना या दोनोंके दण्डनीय होंगे ।

और जो विवाह इस एक्टकी शर्तोंके विरुद्ध किये जाएँ तो उनको नाजायज़ ठहरानेका अदालतको अधिकार होगा ।

पर, शर्त यह है कि यदि कोई झगड़ा इस प्रकारका पड़े कि, विवाह इस कारण नाजायज है कि वह इस एक्टकी शर्तोंके विरुद्ध किया गया है तो जब तक रज़ामन्दी सिद्ध न हो उस समय तक रज़ामन्दीका देना स्वीकार कर लिया जायगा और यदि स्त्री-पुरुषोंका संयोग हो गया हो, तो कोई विवाह नाजायज़ न ठहराया जायगा ।

यदि विधवा बालिग़ है, या उसका अपने पूर्वपतिसे संयोग हो चुका है, तो स्त्रीकी ही रज़ामन्दी उसके पुनर्विवाहके करनेमें कानून और रस्मके अनुसार जायज़ ठहरानेके लिए पर्य्याप्त होगी ।

इस एक्टसे इतनी बातें प्रकाशित होती हैं—

(१) प्रत्येक हिन्दू-विधवाका पुनर्विवाह जायज़ है चाहे अक्षत योनि, चाहे क्षतयोनि, चाहे सन्तानवाली या सन्तान-रहित।

(२) यदि विधवा अक्षतयोनि और नावालिग़ हो, तो पुनर्विवाह केवल पिता, पितामह, माता, बड़े भाई या इनके अभावमें किसी निकटस्थ सम्बन्धीकी रज़ामन्दीसे ही हो सकेगा।

(३) और यदि विधवा क्षतयोनि या वालिग़ हो तो केवल उसीकी रज़ामन्दी पर्याप्त है।

(४) अपने पूर्व पतिकी जो सम्पत्ति विधवाको केवल गुज़ारेके तौर-पर मिलती है वह पुनर्विवाहके पश्चात् उससे छिन जाती है।

(५) परन्तु, जो सम्पत्ति उसकी अन्यथा होती है वह छिन नहीं सकती।

(६) पुनर्विवाहित पतिसे विधवाकी जो संतान होती है वह अपने पिताकी जायज़ संतान होती है और उसकी सम्पत्तिकी भी उत्तराधिकारिणी होती है।

इस लिए विधवा-विवाह करनेवालोंको किसी प्रकारका भी कानूनी भय नहीं है।

१७—मितव्ययता।

मितव्ययता गृहस्थधर्मका एक खास कर्तव्य है। शास्त्रकार कहते हैं कि गृहस्थ लोग पुरुषार्थद्वारा जो धन कमावें, उसके उन्हें चार विभाग करना चाहिए। एक भाग निजखर्चमें और एक भाग दान-धर्ममें लगाना चाहिए; तथा एक भाग आपत्तिके लिए और एक भाग विवाहादि नैमित्तिक कार्योंके लिए रख छोड़ना चाहिए। इस नियमके होते हुए भी मानवोंको उचित है कि वे सदा सादा शुद्ध और पौष्टिक भोजन करें, अतिथि तथा कुटुम्बीजनोंको भी इसी तरहका भोजन करावें, साधारण किन्तु साफ़—निर्मल वस्त्र पहिनें और उचित दान-धर्मादि करें। कपड़ा, वर्तन या अन्य व्यावहारिक सामान कभी जरूरतसे ज्याद: न रक्खें, जहाँ तक संभव हो और मिल सकें अपनी देशकी बनी हुई वस्तु-ओंको उपयोगमें लावें। स्वदेशी चीजें सस्ती और अधिक टिकाऊ होती हैं। जैनी और हिन्दुओंमें एक बड़ा भारी अवगुण यह है कि वे खाने-पीनेमें तो बहुत किफायत किया करते हैं, इससे उनका शरीर निर्बल पड़ जाता है; परन्तु दिखानेके लिए वेशकीमती गहने कपड़े बनवाते हैं। यह नितान्त मूर्खता है। जिस यंत्रसे जगतमें काम लेना है, उस शरीरयंत्रको बराबर करनेवाला और मजबूत रखना प्रत्येक मानवका धर्म है। इसके लिए उसे सदा उचित भोजन पहुँचानेमें कभी किफायत नहीं करनी चाहिए। हम लोगोंमें जन्मसे लेकर विवाह और मरणतककी जो रस्मे हैं, वे बहुत खर्च करानेवाली हैं। इन रस्मोंको स्वल्प खर्चमें पूरा करना चाहिए। इन रस्मोंमें अत्यधिक खर्च करकें हिन्दू तथा जैन कौमके अधिकांश मनुष्य सदा दुर्दशाग्रस्त रहा करते हैं। खर्च हमेशा

ऐसा होना चाहिए कि जो अपनी आमदनीके अनुकूल हो और कभी किसीसे कर्ज़ लेनेकी जरूरत न पड़े। बालकके जन्म होनेपर साधारण खर्च करना चाहिए, क्यों कि उसके दीर्घायु होनेका पूरा निश्चय नहीं किया जा सकता है। अपने धर्मके अनुसार परमात्माकी भक्ति तथा सच्चे दुःखितोंको दान देना एक उचित कार्य है। अन्य अनावश्यक खर्चोंको घटाकर उससे परोपकार साधन करना चाहिए। मुंडन, जनेऊ आदि क्रियाओंको भी बहुत सादगीसे निपटाना चाहिए। विवाहमें मात्र एक गठ-जोड़ा देकर फेरे करानेकी रस्म आवश्यक है। विवाहके समय धार्मिक रीतिसे कुछ पूजन-पाठ कराना और उस समय कुछ सम्बन्धियोंका सम्मिलित होना भी ज़रूरी है। महाराज चन्द्रगुप्तके समयमें (सन् इस्वीसे ३२० वर्ष पहले) विवाह बहुत सादगीसे होता था। उस समय लड़कीवाला अधिकसे अधिक एक जोड़ी बैल दहेजमें देकर लड़कीको विवाह देता था। मरण होनेपर जातिको जीमन या भोज देना बिलकुल अनावश्यक है। खुशीके अवसरपर ही भोजादि देना शोभता है, शोकके समयमें उसकी क्या जरूरत है? यह रिवाज बिलकुल बंद करने लायक है। प्रत्येक जातिके पढ़े लिखे तथा समझदार पुरुषोंको सम्मति करके यह निश्चय कर लेना चाहिए कि जन्मसे लेकर मरण तकके कौन कौनसे संस्कार या रिवाजमें कितना कितना खर्च करना चाहिए। मान लो एक कुटुम्ब ऐसा है जिसमें दो लड़के और दो लड़कियाँ हैं और उसकी मासिक आमदनी ५० रु० है। ऐसी स्थितिमें वह अपने कुटुम्बके नित्य आवश्यक खर्चको चलाता हुआ विवाहादिक संस्कारोंको किस तरह और कितने खर्चमें निपटावे, जिससे उसे कर्ज न लेना पड़े। इसी दृष्टिसे बनाये हुए नियमोंपर गरीब और अमीर सबको चलना चाहिए। जब तक अमीर लोग अपने कार्य सादगीसे समाजके बनाये हुए नियमोंके

अनुसार न करेंगे, तब तक मध्यम और साधारण स्थितिके लोग उन नियमोंपर नहीं चल सकते हैं। मानवोंमें एक तरहका ऐसा अभिमान होता है कि वे अल्पधनी होनेपर भी विवाहादि सामाजिक रिवाजोंमें बहुधनी लोगोंके बराबर खर्च न करनेमें अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं। जब धनवान् पुरुष भी उन सब रीति-रिवाजोंको स्वल्प व्ययमें सम्पन्न करने लगेंगे, तब उनकी जातिके धनहीन और साधारण स्थितिके लोगोंको भी उसी तरह सादगी और कम खर्चमें काम निपटानेमें कोई शरम न माॡम पड़ेगी। धनवान् लोग यदि धनको विशेष खर्चना चाहें, तो वे पुत्रजन्म, विवाह, या उपनयन आदि संस्कारोंके समय या किसीके मृत हो जाने पर समाज और देशकी किसी उपयोगी संस्थाको दान दे सकते हैं। देशमें ऐसे बहुतसे अनाथालय, औषधालय, विद्यालय तथा ब्रह्मचर्याश्रम आदि हैं, जिनको धनकी बहुत आवश्यकता रहती है। ऐसी संस्थाओंको दान देनेसे समाज और देशका कल्याण होगा। इसके सिवा देशमें अनेक परोपकारी कामोंके प्रतिष्ठित करनेकी आवश्यकता है। धनवान लोगोंको ऐसे शुभ कामोंमें अपने धनका सदुपयोग करना चाहिए। बड़े बड़े धनवान् पुरुष विवाहमें पचास हजारसे लेकर एक एक लाख रुपया तक खर्च करते हैं। इस व्यर्थ खर्चको न कर डालते हुए उन्हें इस रकमको किसी परोपकारी संस्था खोलनेमें लगाना चाहिए। धन बड़े परिश्रमसे कमाया जाता है, इस लिए उसे खर्च भी बहुत विवेकके साथ करना चाहिए। धन होनेका यह मतलब नहीं है कि हम उसे कुमार्गमें खो देवें, उसे दान—धर्म आदिमें लगाकर सफल बनाना चाहिए। हिन्दू और जैन समाजमें ऐसे बहुतसे नवयुवक मिलेंगे, जो योग्य, सदाचारी, कमाऊ तथा तन्दुरुस्त हैं और विवाह होनेके सर्वथा पात्र हैं; परन्तु उनके विवाह इसी लिए नहीं हुए हैं कि उनके पास कन्यावालेको देनेके

लिए २००० रुपया नहीं हैं। वास्तवमें यदि इन कुरीतियोंका शीघ्र काला मुँह न किया जायगा, तो यही कहना होगा कि इन दो जातियोंमें केवल धनवानोंको ही जीने और गृहस्थधर्म पालनेका हक है, शेष सब गरीबोंकी जिन्दगी बेकार है। ऐसी अवस्था समाजके नाशका कारण है। समाजमें जितने स्त्री-पुरुष हों, उन सबको अपना अपना जीवन संतोष-पूर्वक बिताना जरूरी है। अन्यथा चिन्ताकी आग उनको असमयमें ही भस्म कर डालती है। मितव्ययी न होनेसे मनुष्योंका मन सत्य और न्याय पथसे हट जाता है और अन्याय, चोरी, दगाबाजी आदि घृणित दोष उनमें आ जाते हैं। विवाह आदिके व्ययकी चिन्ता उन्हें कुमार्ग आदि द्वारा किसी तरह एक निश्चित धन एकत्रित करनेको विवश करती है। समाजमें इस प्रकार चोरी, दगाबाजी और अन्याय फैलानेका पाप वास्तवमें जातिके उन पंचों और मुखिया लोगोंपर है, जो रीति रिवाजोंको सुधारने और उनको कम-व्यय-साध्य बनानेका कष्ट नहीं उठाते हैं—जो केवल धनवानोंकी ओर देखते, पर गरीबोंकी ओर निगाह तक नहीं डालते हैं।

समाजमें सुख-संतोष कायम रखनेके लिए ऋणहीन मितव्ययी जीवन बिताना अत्यन्त आवश्यक है। एक मितव्ययता समाजके अनेक दुःख-दोषोंको मिटानेमें पूर्ण समर्थ है।

---

१८ धर्म-परिवर्तन और प्रायश्चित्त।

मानव समाजका संसारमें यह भी एक कर्त्तव्य है कि वह धर्मको पाले और व्यवहारमें किन्हीं धार्मिक नियमोंके अनुसार चले। धार्मिक नियमोंकी विभिन्नतासे ही जगत्‌में अनेक धर्मोंके समुदाय पाये

जाते हैं। यथा–ईसाई, पारसी, मुसलमान, हिन्दू, सिक्ख, आर्यसमाजी, जैन आदि।

जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपनी रुचिके अनुसार भोजन करने, कपड़ा पहिरने, मनचाही विद्या पढ़ने और इच्छित व्यवसाय करनेमें पूर्ण स्वतंत्र है, उसी प्रकार वह अपने इच्छानुसार चाहे जिस धर्मके पालन करनेमें भी पूर्ण स्वतंत्र है—अपनी श्रद्धा और विश्वासके अनुसार प्रत्येक मनुष्यको धर्म-परिवर्तन करनेका पूर्ण अधिकार हे। प्रत्येक धर्मके प्रचारकोंको चाहिए कि वे अपने अपने धर्मकी विशेषताओं—खूबियों तथा नियमोंको शांतिके साथ प्रकट करें। जिस किसीको वे नियम पसंद आवें और जो अपना प्राचीन धर्म छोड़कर नये धर्ममें जाना चाहे, उसको खुशीके साथ ऐसा करने दें। धर्म-परिवर्तनमें बलात्कार और भयसे कभी काम न लेना चाहिए।

जैन पुराणोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि धर्मपरिवर्तन करनेकी स्वतंत्रता सदासे मानव-समाजमें रही है। महाराज श्रेणिक जन्मतः जैन थे, बीचमें वे बौद्धमतावलम्बी हो गए और अंतको फिर उन्होंने जैन-धर्म ग्रहण कर लिया। जिस समय वे बौद्धमतानुयायी थे, उस समय उन्हें शिकार आदि खेलनेका शौक हो गया था; परंतु पुनः जैनधर्मकी छायामें आते ही उन्होंने इन सब अनर्थोंको त्याग दिया था। हर एक मानवको जैनधर्म धारण करनेका अधिकार है। इस लिए जैनधर्मका उपदेश देते हुए पहले मिथ्याश्रद्धान छुड़ानेके लिए सच्चा श्रद्धान कराया है, पश्चात् व्रतोंका उपदेश देकर आठ बातोंको छुड़ानेका उपदेश दिया है। इन आठ बातोंको 'गृहस्थोंके आठ मूल गुण'के नामसे प्रसिद्ध किया गया है। श्रीसमन्तभद्राचार्य विक्रमकी द्वितीय शताब्दिमें हो गये हैं। उन्होंने 'रत्नकरंड-श्रावकाचार' ग्रंथ निर्माण किया है। इसमें पहले श्रद्धान ठीक

करनेके लिए पहला अध्याय ४१ श्लोकोंमें वर्णित किया है, फिर ७ श्लोकोंमें सम्यग्ज्ञानका वर्णन है, फिर तीसरे अध्यायमें चारित्रका वर्णन है। उसमें इन आठ बातोंका कथन है—

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥ ६६ ॥

अर्थात् मद्य या नशेका पीना, मांसका न खाना, मधु (शहद) न खाना, संकल्पित हिंसा न करना, असत्य न बोलना, चोरी न करना, एकदेशीय ब्रह्मचर्य्य पालना और अधिक तृष्णा न रखकर परिग्रहका प्रमाण रखना, गृहस्थोंके ये आठ मूल गुण हैं।

इस कथनसे यह बात सिद्ध होती है कि जो कोई मांसाहारी, शराबी, चोर, झूठा, व्यभिचारी आदि भी जैनधर्म ग्रहण करना चाहे, तो वह कर सकता है और अपने मैलको धोकर पवित्र बन सकता है। श्रद्धान, ज्ञान और चारित्रके बिगड़नेसे मनुष्य अधर्मी हो जाता है और वही श्रद्धान, ज्ञान तथा चारित्रके सुधरनेसे धर्मवान् बन जाता है। इस लिए एक मुसलमान और ईसाईको भी जैनधर्म ग्रहण करके जैनगृहस्थ और मुनिके चारित्र पालनेका अधिकार है। धर्म-परिवर्तनके साथ ही साथ उसका नाम भी बदल जाता है। जो पहले मुसलमान, ईसाई या पारसी कहलाता था, वही जैनधर्म ग्रहण करनेपर जैन कहलाने लगता है और उसे जैन लोग अपना साधर्मी भाई मानने लगते हैं। इस भारतवर्षमें पहले धर्म-परिवर्तनमें बिलकुल घृणा नहीं मानी जाती थी; परंतु जबसे मुसलमानोंने अपने धर्ममें मिलानेके लिए लोगोंके साथ बलात्कार करना प्रारंभ किया, तबसे हिन्दुओंके भीतर और उनकी देखादेखी जैनियोंके भीतर भी मुसलमानोंके प्रति घृणा पैदा हो गई। और मुसलमानों और ईसाइयोंका खान-

पान एकसा होनेके कारण वही घृणा ईसाइयोंकी तरफ भी हो गई। इस लिए आजकल बहुतसे नादान भाई-बहिन जो सच्चे धार्मिक-तत्त्वको नहीं जानते हैं, परंतु जो धर्मात्मा होनेका झूठा अभिमान रखते हैं, वे यह खयाल बनाए हुए हैं कि मुसलमान या ईसाई जैनधर्म भले ही पालने लगें; परंतु वे कभी हमारे बराबर नहीं हो सकते हैं—वे कभी इस योग्य नहीं हो सकते हैं कि हम उनके हाथका छुआ भोजन खावें या पानी पीवें, अथवा उनको व्यवहार-धर्म पालनेके वही हक देवें, जिनको हमने अपना हक़ मान रक्खा है—जैसे मूर्त्तिका स्पर्शन, पूजन और जैन साधु-ओंको दान देना आदि।

यह मान्यता—यह विश्वास धर्मसे सर्वथा विरुद्ध है। जब किसीने अपनी भूल सुधार ली, जब वह तुम्हारे ही समान धार्मिक नियमोंका पालन करने लगा और जब वह आचार विचार आदि सब बातोंमें तुम्हारे ही समान हो गया, तब भी उससे भेद रहा? तब भी उससे घृणा बाकी रही? ऐसा संकुचित व्यवहार कभी धर्मका मार्ग नहीं कहा जा सकता है।

जैन पुराणोंमें ऐसे बहुतसे दृष्टान्त भर पड़े हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि एक समय जो दुराचारी तथा घोर पापी थे, वे भी जैनधर्म ग्रहण करके मुनिपद तक पहुँच गए और जगतमें वंदनीय हो गए। श्रीमहावीर स्वामीके समयमें—जिसे आज ढाई हज़ार वर्षसे अधिक नहीं हुआ है—ऐसे अनेक व्यक्ति जैनधर्मकी छत्रछायामें आकर कल्याणमार्गके पथिक बन गए हैं। यथा—

(१) **अंजन चोर**। यह सब दुराचारोंमें बढ़ा चढ़ा हुआ था। इसने एक मुनिराजसे धर्म सुनकर जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण की और धर्मपथपर चलकर यह मुनिपदपर पहुँच गया। यही नहीं, आगे इसने ऐसा तप किया कि यह मोक्षपदका अधिकारी हुआ।

(२) **विद्युत् चोर** । यह भी चोरोंका सर्दार था । यह श्रीजम्बू-स्वामी अंतिम केवलीके साथ मुनि हो गया और तप कर सर्वार्थसिद्धि विमानमें गया । आगे एक बार मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष पदका अधिकारी होगा ।

(३) **सौदास राजा** । यह श्रीरामचन्द्रजीके वंशमें हो गया है । उसे नरमांस भक्षणका बड़ा शौक था । वह लड़कोंको मार मारकर खाता था । जब वह नगरसे निकाल दिया गया, तब वन्य हिंस्र पशुओंके समान मांस खाता हुआ फिरने लगा । वह सिंह सौदास नामसे प्रसिद्ध हुआ । ऐसा पापी सौदास भी मुनिराजकी संगतिसे पुण्यव्रती श्रावक होकर—मांसादि भक्षण छोड़कर फिर राज्यका स्वामी बन गया । श्रीरविषेणाचार्य कृत पद्मपुराणके २२ वें पर्वमें लिखा है:—

> **सिंहस्येव यतो मांसमाहारोऽस्याभवत्ततः ।**
> **सिंहसौदासशब्देन भुवने ख्यातिमागतः ॥ १४७ ॥**
> **दक्षिणापथमासाद्य प्राप्यानंबरसंश्रयं ।**
> **श्रुत्वा धर्मं बभूवासावणुव्रतधरो महान् ॥ १४८ ॥**
> **ततो महापुरे राज्ञि मृते पुत्रविवर्जिते ।**
> **स्कंधामारोपितः प्राप राज्यं राजद्विपेन सः ॥ १४९ ॥**

इससे यह सिद्ध होता है कि महापापी भी धर्माचरणसे शुद्ध हो जाता है ।

(४) श्रीमहावीर स्वामीके समवशरणमें महाराज श्रेणिक मुख्य श्रोता थे । एक बार ये अपने जीवन कालमें जैनधर्मको छोड़ कर बौद्ध हो गए थे । उस समय वे अपने साथ शिकारके लिए ५०० कुत्ते रखते थे; परंतु पुनः श्रद्धा करके जब वे जैनधर्ममें लौटे और शिकार आदि दुर्व्यसनोंको परित्याग कर दिया, तब वे उत्तम जैन गृहस्थ माने जाने लगे ।

(५) यह बात इतिहासप्रसिद्ध है कि महाराज चन्द्रगुप्तने ग्रीक देशके राजा सेल्युकसकी कन्यासे विवाह किया था। चन्द्रगुप्त जन्मसे जैन राजा थे। उन्होंने श्रीभद्रबाहु श्रुतकेवलीसे दीक्षा ग्रहण की थी। यह बात श्रवणबेलगोला (मैसूर) के शिलालेखोंसे प्रकट है।

(६) जैनियोंका परम माननीय ग्रन्थ गोम्मटसार लब्धिसार है। उसमें लिखा है कि म्लेच्छ देशके लोग जिनमें वर्ण-व्यवस्था नहीं है—यद्यपि राजा-प्रजा खेती आदि व्यवहार है—विजित होकर भरत चक्रवर्तीके साथ भरत-खंडमें आते और धर्मसाधन करके मुनि पद तक पहुँचते हैं। उनकी कन्याएँ भरतखंडके उच्च कुलके लोगोंको ब्याही जाती हैं और उनसे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे मुनि जैसे सम्माननीय पदको प्राप्त करते हैं। प्रमाण यह है—

तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छ अज्जेया ।
कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि संखं वा ॥ १९५ ॥

म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवति इति नाशंकितव्यं । द्विग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सह जातवैवाहिकसम्बन्धानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात् । अथवा तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यपदेशभाजः संयमसंभवात् तथा जातियकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात् ।

भावार्थ। शंका—म्लेच्छ क्षेत्रके मनुष्योंको मुनिव्रत किस तरह हो सकता है? उत्तर—ऐसी शंका व्यर्थ है। जब चक्रवर्ती राजा दिग्विजय करने जाते हैं, तब उनके साथ आर्यखण्डमें आये हुए म्लेच्छ राजाओंका चक्रवर्ती आदिके साथ विवाहसम्बन्ध हो जानेसे वे संयम ले सकते हैं। इसमें विरोध नहीं है। अथवा म्लेच्छ राजाओंकी कन्याएँ चक्रवर्ती आदिके साथ ब्याही जाती हैं। उन म्लेच्छ पुत्रियोंके गर्भसे उत्पन्न पुरुष—जो

मातृपक्षसे म्लेच्छ हैं—संयम ले सकते हैं। ऐसी जातिवालोंमें दीक्षा ग्रहण करनेकी पात्रता है, इसमें कोई मनाई नहीं है।

इस दृष्टान्तसे यह बात सिद्ध होती है कि जिस देशमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्ण-व्यवस्था नहीं है, परंतु जहाँ असि, मसि, कृषि आदि षट्कर्म करनेवाले लोग हैं, उनको उनके आचरणके अनुसार ही क्षत्रिय या वैश्य आदि माना जाता था और उनके साथ भरतखंडके लोग खुशीसे विवाह सम्बन्ध करते थे। आर्य्यखंडमें रहते हुए वे उच्चवर्णके हो जाते थे और उनको मुनिव्रत दिया जाता था। जो राजालोग म्लेच्छराजाओंकी कन्याओंके साथ विवाह करते थे, वे उन्हें अपनी धर्मपत्नी बनाते थे—उनसे पैदा हुए पुत्र मुनिव्रत ले सकते थे। साम्प्रत भरतखंडमें ही वर्ण-व्यवस्था है; परन्तु इसके भीतर भी जो भील गोंड आदि जातियाँ है, उनमें वर्णव्यवस्था नहीं है, तथापि वे वैश्यकर्म—खेती करते हैं। तथा भारतके बाहर अफगानिस्तान, फारस, अरब, जापान, चीन, रूस, तिब्बत, यूरुप आफ्रिका, अमेरिका आदि किसी भी देशमें वर्णव्यवस्था नहीं है, परंतु इस सब देशोंमें असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि कर्मोंके करनेवाले लोग हैं। अतः हम लोगोंको उनके अनुसार समान वर्ण मानकर वर्ताव करना चाहिए। जिस प्रकार महाराज चंद्रगुप्तने ग्रीक राज-कन्याके साथ विवाह किया था, उसी प्रकार यहाँके वैश्य भी वहाँके वैश्योंकी कन्याओंके साथ विवाह कर सकते हैं। इन सब देशोंके लोग शुद्ध करके जैनी बनाये जा सकते हैं और जैन बन चुकनेके पीछे आचरण तथा कर्मके अनुसार वे समान वर्णोंमें लिए जा सकते हैं, अर्थात् जो ब्राह्मण, क्षत्री या वैश्य वर्णके समान आचरण रखते हों, उन्हें ब्राह्मण, क्षत्री या वैश्य मान लिया जाय। ऐसे लोगोंको धर्म धारण करनेका धार्मिक समाजहीके समान अधिकार होगा।

श्रीमहापुराणके ३९ वे पर्वमें अजैनको जैन बनानेका विधान श्रीजिनसेनाचार्य्यजीने लिखा है—

तत्रावतारसंज्ञास्यादाद्या दीक्षान्वयक्रिया।
मिथ्यात्वदूषिते भव्ये सन्मार्गग्रहणोन्मुखे ॥ ७ ॥
स तु संसृत्य योगीन्द्रं युक्ताचारमहाधियम्।
गृहस्थाचार्यमथवा प्रच्छतीति विचक्षणः ॥ ८ ॥

भावार्थ—दीक्षान्वय क्रियामें पहली क्रिया अवतार है। तब जो मिथ्याती अजैन है, वह जैनधर्मकी इच्छा करके किसी मुनि या गृहस्थाचार्यके निकट जाकर धर्मका स्वरूप पूछता है और जब उसको श्रद्धान हो जाता है तब वह जैनधर्म ग्रहण करता है। उस समय दीक्षादाता उसे णमोकार मंत्र देता है। वह कहता है—

"मंत्रोयमखिलात् पापात् त्वां पुनीतात्"

यह मंत्र तुमको सब पापोंसे बचावे। फिर कुछ काल पीछे वह वर्णलाभको प्राप्त हो जाता है—वह चार वर्णोंमेंसे किसी एक वर्णमें मिला लिया जाता है। वर्णलाभ होते ही वह खान-पान बेटी-व्यवहार आदिमें समान हो जाता है, जैसा कि इन नीचे लिखे श्लोकोंसे प्रकट है—

वर्णलाभस्ततोऽस्य स्यात् सम्बंधं संविधित्सतः।
समानाजीविभिर्लब्धवर्णैरन्यैरुपासकैः ॥
इत्युक्त्वैनं समाश्वास्य वर्णलाभेन युज्यते।
विधिवत्सोऽपि तं लब्ध्वा याति तत्समकक्षताम् ॥ ७१ ॥

भावार्थ—फिर उस दीक्षित जैनीकी जो आजीविका हो उसके अनुसार उसका वर्ण स्थापित करके उसको अन्य श्रावकोंके समान बनावे। जिस वर्णमें लिया जाय, उस वर्णवाले उसको बराबरीका समझें।

इस कथनसे साफ़ प्रकट है कि हरएक देशके नरनारी जैन बनाये जा सकते हैं और उनके आचरणके अनुसार उनको चार वर्णोंमेंसे किसी

एक वर्णमें सम्मिलित कर सकते हैं। ऐसे मिलाये हुए व्यक्तिके साथ ठीक वैसा ही वर्ताव किया जाना चाहिए जैसा कि जातिवालोंके साथ किया जाता है। शुद्ध हुए मानवोंको अशुद्ध मानना कायरता और दग़ा-बाजी है। सुवर्ण जब शुद्ध हो जाता है, जब उसमेंकी खोट निकाल दी जाती है, तब फिर भी क्या उसे कोई अशुद्ध या दूसरे शुद्ध सोनेसे हीन समझता है? कदापि नहीं।

हरिवंशपुराणमें श्रीजिनसेनाचार्य्य लिखते हैं कि द्वारिकाके भस्म होनेपर और श्रीकृष्णजीकी मृत्युके पश्चात् जरत्कुमार पृथ्वीके राजा हुए थे। ये एक म्लेच्छ राजाकी जरा नाम्नी लड़कीसे पैदा हुए थे जिसको वसुदेव-जीने ब्याहा था—

पर्यटन्नटवीं तत्र म्लेच्छराजेन वीक्षितः।
परिणीय सुतां तस्य जराख्यां तत्र चावसन् ॥६॥

—पर्व ३२

श्रेणिक राजाके पिता उपश्रेणिकने भीलराज यमदंडकी कन्या तिलक-वतीके साथ विवाह किया था। उससे चिलाती नामक पुत्र हुआ, जिसको महाराज श्रेणिकने अपना उत्तराधिकारी मानकर राज्य दिया था।

हमें यह भी देखना चाहिए कि जैन शास्त्रोंमें दोषोंकी शुद्धिका क्या प्रायश्चित्त लिखा है। माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालामें 'प्रायश्चित्तसंग्रह' नामक पुस्तक निकली है। उसके आधारपर नीचे कुछ लिखा जाता है—

छेदिपिण्ड प्राकृत (इन्द्रनंदिकृत, जो तेरहवीं शताब्दीमें हुए हैं) के अनुसार सबसे बड़े पाप व्यभिचारके प्रायश्चित्तके विषयमें लिखा है—

मादसुदादीहिं सजोणियाहि चंडालइत्थियाहि समं।
अव्वंभं पुण सेवंते हवंति बत्तीस उववासा ॥ ३४६ ॥

भावार्थ—जो कोई माता, पुत्री, बहिन आदिसे या चांडालकी स्त्रियोंसे मैथुन करे, उसको बत्तीस उपवास करना चाहिए।

चांडालका अन्न खाने-पीनेका प्रायश्चित्त यह है—

चांडालअण्णपाणे भुत्ते सोलस हवंति उववासा।
चांडालाणं पत्ते भुत्ते अट्ठेव उववासा॥ ३३९॥

भावार्थ—जो चांडालका बनाया हुआ भोजन-पानी खावें-पीवें उनको १६ उपवास और जो चांडालके वर्तनमें खावें उन्हें ८ उपवासका प्रायश्चित्त है।

मदिरा मांस खानेका प्रायश्चित्त यह है—

महु मज्जं मांसं वा दप्पपमादे हि सेवदि कहिं पि।
देसवदी जदि तदो वारस खमणानि छट्ठदुगं॥ ३३२॥

भावार्थ—यदि देशव्रती श्रावक मान या प्रमादसे मदिरा, मांस या मधु खाले, तो उसको १२ उपवासका प्रायश्चित्त है।

आचार्य गुरुदास ग्यारहवीं शताब्दीके पूर्व हुए हैं। वे अपनी 'प्रायश्चित्त-चूलिका' * में लिखते हैं—

सुतामातृभगिन्यादिचांडालीभिरभिगम्य च।
अश्नुवीतोपवासानां द्वाविंशतमसंशयं॥ १५०॥

अर्थात् जो मनुष्य अपनी माता, पुत्री या बहन आदिसे या चांडालीसे मैथुन करे, उसे बत्तीस उपवास करना चाहिए।

मांसादिभक्षणका प्रायश्चित्त यह है—

रेतो मूत्रपुरीषाणि मद्यमांसमधूनि च।
अभक्ष्यं भक्षयेत् षष्ठं दर्पतश्चेत् द्विषद् क्षमाः॥ १४७॥

अर्थात् वीर्य, मूत्र, मल, मदिरा, मांस, मधु, रुधिरादि अभक्ष्य पदार्थोंको प्रमाद (भूल) से खाय, तो छह उपवास और अहंकारके साथ खाय, तो १२ उपवास करना चाहिए।

हिंसाका प्रायश्चित्त यह है—

---

* इस ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद पं० पन्नालालसोनीने किया है और उसे भारतीय जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था, विश्वकोषलेन कलकत्ताने छपवाया है।

आदावन्ते च षष्ठं स्यात् क्षमणान्येकविंशतिः ।
प्रमादाद्गोवधे शुद्धिः कर्तव्या शल्यवर्जितैः ॥ १४० ॥

भावार्थ—यदि प्रमादसे किसीके द्वारा गोवध हो जाय, तो आदि और अंतमें बेला व बीचमें २१ उपवास करे। बीचबीचमें पारणाके दिन कांजिक आहार करे, पानी या इमलीके पानीके साथ भात खावे, प्रतिदिन तीनों काल सामायिक करे और रात्रिमें ध्यान करे।

द्विगुणं द्विगुणं तस्मात् स्त्रीबालपुरुषे हतौ ।
सद्दृष्टिश्रावकर्षीणां द्विगुणं द्विगुणं ततः ॥ १४३ ॥

भावार्थ—स्त्रीको मार डालनेमें गोवधसे दूना, बालहत्यामें स्त्रीवधसे दूना, किसी सामान्य मनुष्यके वधमें बालहत्यासे दूना, किसी पाखंडी साधुके वधमें सामान्य मनुष्यके वधसे दूना, किसी लौकिक ब्राह्मणके वधमें पाखंडी साधुके वधसे दूना, किसी अविरत सम्यग्दृष्टिके वधमें ब्राह्मण वधसे दूना, किसी श्रावकके वधमें सम्यग्दृष्टिके वधसे दूना तथा किसी मुनिके वधमें श्रावकके वधसे दूना प्रायश्चित्त करना चाहिए।

संसारमें सबसे अधिक पाप मुनिहत्या तथा माता, पुत्री, बहन या चांडालिनीके साथ विषयभोग करनेसे लगता है। जब ऐसे पापी भी शुद्ध हो सकते हैं, तब ऐसा कोई पाप नहीं है, जिसके लिए हम किसी भी स्त्री या पुरुषको जातिसे बाहर कर सकें। प्रत्येक अपराधका प्रायश्चित्त है, प्रत्येक अपराधीको उचित प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध कर लेना चाहिए। परिणामोंको शुद्ध कर लेनेसे ही पिछला सब दोष मिट जाता है। दयावान् गुरुओंकी यही आज्ञा है कि वे पतितका उद्धार करें—पापियोंको पापसे छुड़ावें—उनको कुमार्गसे बचाकर सुमार्गमें लगावें। यही सच्चा मानवधर्म है।
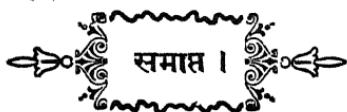
प्रार्थना

समाजसुधारसम्बन्धी विचारोंका प्रचार करनेके लिए और जैनधर्मका मर्म समझनेके लिए जैनजगत और सनातन जैनके ग्राहक बनिए और अपने अपने मित्रोंको बनाइए। कोई स्थान ऐसा न रहना चाहिए जहाँ इन पत्रोंके ग्राहक न हों। जैनसमाज दिनपर दिन क्षीण हो रहा है, मरणके मुँहमें जा रहा है। उससे बचनेका रास्ता बतलानेवाले और धर्मधूर्तों तथा पाखंडियोंसे बचानेवाले यही दो पत्र हैं। दोनों पाक्षिक हैं। पहलेका वार्षिक मूल्य २॥) और दूसरेका दो रुपया है। पता ये हैं—

१ मैनेजर 'जैनजगत', सरावगी मुहल्ला, अजमेर
२ ,, **सनातन जैन**, वर्धा (सी० पी०)

पहलेके सम्पादक साहित्यरत्न पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ और दूसरेके ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी हैं। दोनों पत्र घाटेपर चल रहे हैं। समर्थ और धनी महाशयोंको चाहिए कि अपने पाससे दस दस पाँच पाँच ग्राहकोंका मूल्य भेजकर असमर्थ भाई बहिनोंके पास इन पत्रोंको अपनी ओरसे भिजवावें। निश्चय समझिए कि इन पत्रोंके विचारोंको फैलाना जैनधर्म और जैनसमाजकी बड़ी भारी सेवा करना है।